# मानस सरस्वती



लेखक

श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ श्री वेदान्तीजी महाराज

सी०के० ६३।२१ ए, छोटी पियरी, वाराणसी।

प्रकाशक

वेदान्त प्रचार दैवी संपद मंडल, वाराणसी।

प्रथम संस्करण ] [ संवत् २०१८

ॐ

# मानस सरस्वती



लेखक

श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ श्री वेदान्ती जी महाराज

सी० के० ६३।२१ ए, छोटी पियरी, वाराणसी।

प्रकाशक—

वेदान्त प्रचार दैवी संपद मंडल, वाराणसी।

प्रथम संस्करण ] [ संवत २०१८

जै जै सुरनायक जन सुखदायक प्रनतपाल भगवंता।
गोद्विज हितकारी जय असुरारी सिंधु सुता प्रिय कंता॥
पालन सुर धरनी अद्भुत करनी मरम न जानइ कोई।
जो सहज कृपाला दीन दयाला करउ अनुग्रह सोई॥
जय जय अविनासी सब घट बासी व्यापक परमानन्दा।
अविगत गोतीतं चरित पुनीतं माया रहित मुकुन्दा॥
जेहि लागि विरागी अति अनुरागी विगत मोह मुनि वृन्दा।
निसि बासर ध्यावहिं गुन गन गावहिं जयति सच्चिदानन्दा।
जेहि सृष्टि उपाई त्रिविधि बनाई संग सहाय न दूजा।
सो करउ अघारी चिंत हमारी जानिअ भगति न पूजा॥
जो भव भय भंजन मुनि मन रंजन गंजन विपति बरूथा।
मन बच क्रम बानी छाड़ि सयानी सरन सकल सुर जूथा॥
सारद श्रुति शेषा रिषय अशेषा जाकहुँ कोउ नहिं जाना।
जेहि दीन प्यारे वेद पुकारे द्रवहु सो श्री भगवाना॥
भव बारिध मंदर सब विधि सुन्दर गुन मंदिर सुख पुञ्जा।
मुनि सिद्धि सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ पदकंजा॥

# श्री वेदान्तीजी लिखित पुस्तकों की सूची

१—अष्टादशश्लोकी गीतामृतवर्षिणी

२—धर्मप्रश्नोत्तरी

३—दशनामापराध ज्ञानमाला

४—भगवद्गीता प्रश्नोत्तरी

५—मानस सरस्वती

**मिलने का पता—**

परमानन्द

सी. के. ६३।२१ ए छोटी पियरी,

काशी।

# आर्ती

जगमग जगमग जोति जगी है । राम आर्ती होन लगी है ॥
कंचन भवन रतन सिंहासन । दासन डासे झिलमिल डासन ।
तापर राजत जगत प्रकाशन । देखत छवि मति प्रेम पगी है ॥
महकत धूप वरत महतावी । झलकत कुंडल रवि छवि दावी ।
अंग अंग सुन्दरता फावी । आनंद की सरिता उमगी है ॥
घंटा घड़ी मृदंग वजावत । नूपुर पग भरि नाचत गावत ।
पूरित संखहिं चंवर डुलावत । सुनतहिं दूरि वलाय भगी है ॥
रूप देखि जननी हरषतु हैं । अंजुरिन देवसुमन बरसतु हैं ।
करि दंडवत चरन परसतु हैं । सुमति राम के रंग रंगी है ॥

॥ जगमग ॥
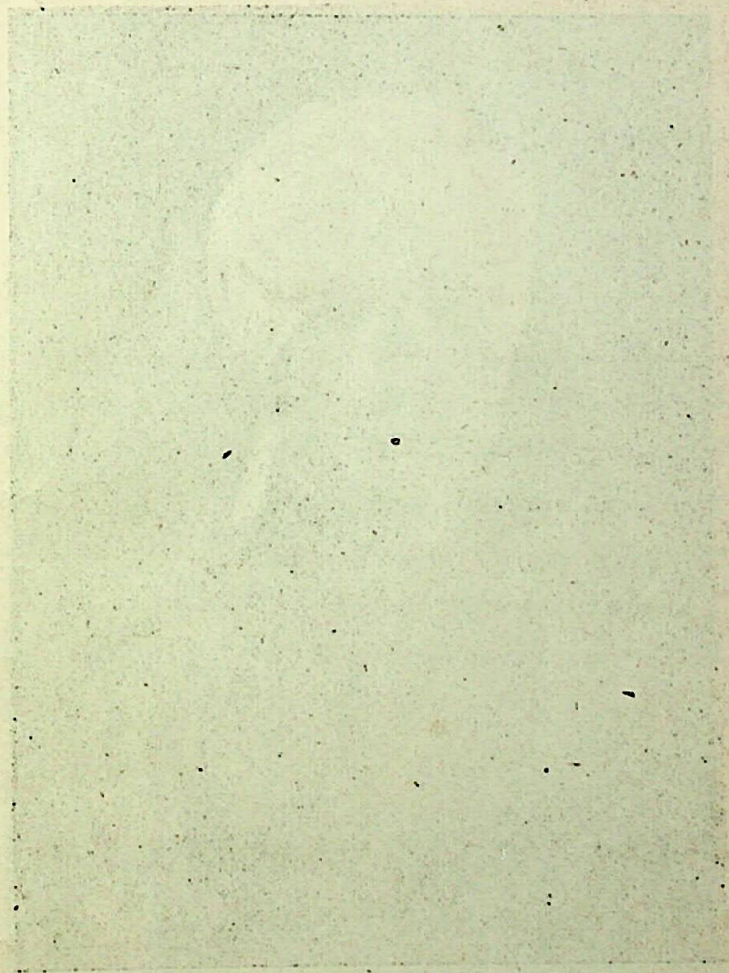
श्री परमेश्वरी प्रसाद अग्रवाल

## दो शब्द

इस पुस्तक के मुद्रण में विशेष सहयोग राय साहब डाक्टर रामस्वरूप अग्रवाल का रहा है। उनके स्वर्गीय पिता बाबू परमेश्वरी दास की फोटो तथा संक्षिप्त जीवन-चरित्र तथा दिनचर्या प्रकाशित की जाती है ताकि संसारी लोगों को अपने जीवन में प्रेरणा मिले। डाक्टर रामस्वरूप इस पुस्तक क बड़ी श्रद्धा और नम्रता के साथ अपने आदरणीय पूज्य पिताजी के चरणों में समर्पित करते हैं और ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि उनके पिताजी की आत्मा को शान्ति प्राप्त हो और डाक्टर साहब को श्रीराम के चरणों में अनन्य भक्ति का अनुभव हो।

—वेदान्तीजी

# संक्षिप्त जीवन-चरित्र तथा दिनचर्या
## स्वर्गीय बाबू परमेश्वरी दास

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥

—गीता ३।२१

अर्थ—श्रेष्ठ पुरुष जो जो आचरण करते हैं, अन्य पुरुष भी उसके ही अनुसार वर्तते हैं, वह पुरुष जो कुछ प्रमाण कर देते हैं, लोग भी उसके अनुसार बर्तते हैं।

अतएव हमें श्रेष्ठ पुरुषों के जीवन से अलभ्य प्रेरणा मिलती है। "ब्रह्मनिष्ठ" बाबू परमेश्वरी दासजीने अपने ९१ वर्ष के दीर्घ जीवन काल में अपने सम्पर्क में आने वाले सहस्रों मनुष्यों के जीवन को प्रकाश और प्रेरणा दी। उन्हें सत्य और सदाचार की ओर चलाया। शारीरिक स्वास्थ्य व भौतिक उन्नति के साथ-साथ आध्यात्मिक जीवन के सम्मिश्रण की झाँकी दिखाई और यह सिद्ध कर दिखाया कि राजा जनक एक कल्पना मात्र आदर्श ही नहीं थे वरन् सचमुच यह सम्भव है कि मनुष्य अपने कर्त्तव्य-कर्मों को करते हुए, सांसारिक सुखों और दुखों में रहते हुए भी तटस्थ और निर्लेप रह सकता है।

इन जीवन मुक्त कर्मयोगी महापुरुष का जन्म अग्रवाल वैश्य कुल में बरेली नगर में सन् १८६७ में हुआ। आपका व्यायाम और खेल कूद का व्यसन अपूर्व था। आपने ८ वर्ष की अवस्था में मुगदर हिलाना और दंड बैठक करना आरम्भ किया और उसका इतने नियमित रूप से

निभाया कि ९० वर्ष की अवस्था में भी आप प्रतिदिन करते रहे। १२ वर्ष की अवस्था में यज्ञोपवीत संस्कार के साथ- साथ आपने तीन बातों की दीक्षा ली और ऐसी दीक्षा ली कि उनको ६० वर्ष की अवस्था तक मशीन की तरह निभाकर दिखाया। धन्य हैं वह गुरुजी इतनी पक्की और स्थाई दीक्षा दे सके और धन्य है वह शिष्य जो इतनी तत्परता और अकाट्य रूप से उस दीक्षा का निरन्तर १२ वष की अवस्था से ६० वष तक की अवस्था तक पालन कर सका वे तीन बातें ये थी:-स्वरज्ञान, गायत्री जाप और द्विकालीय संध्या व प्राणायाम आपका दैनिक कार्य-क्रम निम्नलिखित था:-

(१) स्वरज्ञान की पराकाष्ठा। स्वर को पहिचान कर भोजन करना अथवा उपवास करना, स्वर की आज्ञानुसार सोना। स्वरज्ञान आपके जीवन का एक ऐसा साथी था, ऐसा गुरु था, ऐसा निर्देशक था जिसकी अवहेलना आपने किसी भी अवस्था और किसी भी परिस्थिति में नहीं होने दी! कई अंग्रेज मित्र अथवा अफसरों ने आपके स्वास्थ्य और कर्तव्यपरायणता और व्यक्तित्व से प्रभावित होकर आपसे स्वर ज्ञानका मंत्र लिया और इससे स्वयं लाभ उठाकर उसकी प्रशंसा स्वजनों में करते रहे।

(२) प्रतिदिन प्रात:काल ब्रह्ममुहूर्त में सूर्योदय से २३ घड़ी ( यानी १ घंटा ) पूर्व उठकर सर्वप्रथम ध्रुव तारे तथा सप्तर्षि मंडल के दर्शन करते थे। यदि किसी दिन आकाश मेघाच्छादित होने के कारण ध्रुव दर्शन नहीं हो पाता था तो दिन भर वह विकल रहते थे और एक ही बार भोजन करते थे, परन्तु इसका पता अपने परिवार को नहीं होने देते थे।

(३) गऊ दर्शन ( अधिकतर अपने घर की या कहीं और की )! उसको रोटी व मिष्ठान अपने हाथ से खिलाते थे

(४) नित्य कर्मों से निवृत्त होकर (जिसमें नेती और तेल की मालिश भी सम्मिलित थी) सूर्योदय से पहले पूजा पर बैठ जाते थे। कदाचित ही कोई ऐसा नवजात सूर्य हो जिसने उन्हें संध्या उपरान्त गायत्री जाप करते हुए न पाया हो। कई माला गायत्री जाप प्रातःकाल और कई माला गायत्री जाप सांयकाल उन्होंने सदा सर्वदा ७८ वर्ष तक नियमित रूप से श्रद्धापूर्वक किया।

(५) उनके पूजन का नियम निरन्तर निम्नलिखित रहा और कभी किसी ने उसमें क्रम भंग होते नहीं देखा—

(क) संध्या
(ख) प्राणायाम
(ग) गायत्री जाप
(घ) थोड़ा सा गीता, रामायण और सुखसागर पाठ।

(च) कोई आठ दस उच्च व गम्भीर स्वर में प्रार्थना अथवा स्तुति जिनमें से दो इस समय याद पड़ रही है। (i) ऊख में मिठाई जैसे, नमक में खारापन जैसे कष्ट में अग्नि जैसे……… (ii) मेरा कुछ नहीं प्रभु तेरी प्रभुताई है।

(छ) अपने घर में स्थापित शिवलिङ्ग का अपने हाथ से कुएँ का पानी भर कर अभिषेक।

(ज) व्यायाम (मुगदर, दंड, बैठक)

(झ) अब यदि कोई सज्जन घंटा डेढ़ घंटा से बैठे प्रतीक्षा कर रहे हैं (चाहे वह अंग्रेज ही क्यों न हो, उनका अफसर ही क्यों न हो) अथवा कोई मुहल्ले वाला दाद फरियादवाला, अथवा कोई भिक्षुक या आर्त दुःख निवेदक—उससे दस पाँच मिनट बातचीत करते जाना और कपड़े पहनने जाना जिनमें विशेष उल्लेखनीय उनका साफा था,

जिसकी शान का साफा आजतक हमने देखा नहीं है। ( उन्होंने कभी टाई नहीं लगाई, कभी खुले गले का कोट नहीं पहना और चमड़े का प्रयोग नहीं किया )

( ट ) अब जनान खाने में जाकर कोई डेढ़ पाव एक कटोरा भर दूध धीरे धीरे छः सात मिनट में पीना। बाबूजी के यह छः सात मिनट उनके पुत्रों व पौत्रों व सम्बन्धियों के लिए अमूल्य सौभाग्य दायक व शिक्षाप्रद होते थे।

( ढ ) अब बाबूजी अमीनाबाद पार्क वाले हनुमान जी के दर्शन करने जाते थे। वैसे तो सारा का सारा अमीनाबादपार्क बाबूजी की ही इन्जीनियरी की करामात है ( क्योंकि सन् १९०० से पूर्व यहाँ जंगल था और यह पार्क बाबूजी ने ही बनवाया था ) परन्तु बाबूजी ने अपना विशेष सम्बन्ध अन्तकाल तक अपनी विशेष सम्बन्ध अन्त काल तक अपनी स्थापित हनुमान जी की मूर्ति से ही रक्खा और इस मन्दिर की कार्यकारिणी कमेटी के सदस्य पचास वर्ष से अधिक अपने स्वर्गारोहण तक रहे।

बस अब ८ बजे प्रातः हनुमान जी के दर्शन के पश्चात् मानो बाबूजी का चोला बदल जाता था। अब बाबूजी कम से कम ३ घंटे तक धूप, गरमी, जाड़ा बरसात किसी की परवाह न करके कड़े से कड़ा काम करने के लिए अपने घोड़े की पीठ पर, या टमटम पर और बादको मोटर पर निकलते थे तो आश्चर्य होता था कि इतनी बिजली इतना तेज, इतना परिश्रम, इतनी मिठास, इतना रोब, इतनी प्रभुता, इतनी कोमलता, इतनी सूझ-बूझ एक ही शरीर में कहाँ से और कैसे आ गई। यदि सवारी पर जाते हुए रास्ते में कोई निर्बल या निर्धन व्यक्ति उसी ओर जाता दिखाई पड़ जाता था तो गाड़ी रोककर बड़े सम्मान व आग्रह पूर्वक उसे गाड़ी में बिठा लेते थे और उसे यथास्थान उतार देते थे।

बाबूजी मिलनसार व्यक्ति थे। वह अक्सर कहा करते थे 'तुलसी या जग आयके सबसे मिलिये धाय, न जाने किस रूप में नारायण मिल जाय।" सो बाबूजी ऐसे मिलनसार व्यक्ति के लम्बे जीवनमें लाखों आदमी उनके सम्पर्क में आये होंगे और उनका अनुभव होगा।

(१) बाबूजी कभी भी किसी भी बड़े से बड़े आदमी के सामने न दीन बने न गिड़गिड़ाये और न घबराये।

(२) बाबूजी ने कभी किसी छोटे से छोटे अकिंचन आदमी को न गाली दी न मारा न कड़वी बात कही न स्वयं के विषय में कभी ऐसी बात कही जिससे अभिमान झलकता हो।

(३) कोई भी मनुष्य कभी भी बाबूजी के मुख पर कोई झूठ न बोल पाया। बुरे से बुरे, झूठे से झूठे आदमी की हिम्मत ही नहीं हो पाती थी कि बाबूजी से झूठी बात कह जाय या झूठा वायदा करजाय। बाबूजी के सम्मुख सत्य बात बरबस मुँह से निकल ही पड़ती थी।

(४) लखनऊ में बाबूजी ने लाखों की जायदाद छोड़ी और कम से कम ६०-७० किरायदारों से उनका सम्पर्क रहा परन्तु कभी भी बाबूजी ने किसी के ऊपर न कोई नालिश की कानूनन उसको वेदखल या कुर्की कराया। बाबूजी बड़े क्षमाशील व उदार थे।

(५) बाबूजी के पास सैकड़ों संस्था वाले और व्यक्तिगत मांगने वाले दीन दुखी आया करते थे। बाबूजी ने कभी किसी को निराश न किया सर्वदा किसी न किसी रूप से उसकी सेवा ही की। बाबूजी की सेवा दान परमार्थ सब चुपके चुपके चलते थे। और शायद उन्होंने अपने जीवन में सैकड़ों पुस्तकें तो दान की ही होंगी। प्रायः ये पुस्तकें तो दान की ही होंगी। प्रायः ये पुस्तकें उनकी पढ़ी हुई होती थीं। उनका

स्वाध्याय प्रेम वास्तविक रूप से अनुपम था और उनकी स्मरणशक्ति इतनी तीव्र थी कि सैकड़ों दोहे चौपाइयाँ लोकोक्तियाँ अंग्रेजी, हिन्दी, संस्कृत व फारसी की वे बात-बात पर सुनाया करते थे और वे अवसर पर इतनी उपयुक्त और अकाट्य होती थी कि मनुष्य के हृदय में घुस कर उसके जीवन को सदा सर्वदा बदल देने में समर्थ थीं। बाबूजी के पास कोई ऐसी मोहिनी शक्ति थी कि जब कोई दीन दुखी स्त्री आकर बाबूजी से शिकायत करती कि मेरा पति शराब पीता है, जुआ खेलता है या मुझे मारता है अथवा कोई मनुष्य यह कहे कि अमुक मेरी सम्पत्ति या अधिकार छीनना चाहता है या मेरी मानहानि करता है तो वह प्रतिवादी को बुलवा कर पाँच मिनट में ऐसी मीठी फटकार लगाते थे और कुछ ऐसी बातें कहते थे कि वर्षों का वैमनस्य वर्षों का पुराना अभ्यास सर्वदा को शांत हो जाता था। उन्होंने कई मुकदमें, जिसमें दोनों पक्ष के लोग निष्प्राण हो जाते, इतनी सरलता से सुलझा दिया करते थे लोग दाँतों तले अँगुली दबा गये। उनकी जान पहचान के सैकड़ों लोग, दोनों पक्ष के लोग किसी भी मामले में उन्हें पंच बनाने को तैय्यार रहते थे क्योंकि लोगों को पूर्ण विश्वास था कि बाबूजी कभी अन्याय नहीं होने देंगे और न बड़े से दबेंगे न छोटे को दबायेंगे और जटिल से जटिल समस्या का भी कोई न कोई ऐसा सर्व मान्य समाधान निकालकर ऐसा न्याय करेंगे कि दोनों पक्ष उसे अपनी ही जीत समझेंगे।

महामना पंडित मदन मोहन मालवीय उनके एक प्रगाढ़ मित्र थे। उन्होंने बाबूजी से कहा, हमें विश्वविद्यालय के लिए एक करोड़ रुपया और चाहिए।" यह कैसे सम्भव था कि बाबूजी ऐसे शुभ कार्य में पीछे रह जाते। काशी विश्वविद्यालय की दूसरी करोड़ के अपील पर बाबूजी के हस्ताक्षर थे। बाबूजी द्वारा जमाकी गई धन राशि व्यक्तिगत रूप से उनकी ही सबसे अधिक थी। दूसरे लोग व्याख्यान

देकर, अभिनय, नाच या गाना द्वारा जितना नहीं उगाह सके उससे अधिक बाबूजी ने अपने मित्रों तथा परिचित जनों से हँस कर ले लिया। काशी विश्वविद्यालय की लखनऊ में स्थित जायदाद के अवैतनिक इंजीनियर वे जीवन भर रहे।

'कुछ बौद्ध धर्म के भिक्षुक लखनऊ में अपना मठ (प्रान्तीय Head Quarters के रूप में) स्थापित करना चाहते थे। बाबूजी कट्टर सनातनधर्मी थे परन्तु पता नहीं क्यों उन्होंने बाबूजी से सहायता चाही। बाबूजी का हृदय बहुत विशाल था और वे सब धर्मों का सम्मान करते थे। अतएव उन्होंने उनको जमीन दिलवाई, चन्दा दिलवाया, उनकी इमारत बनवाई, पुस्तकालय बनवाया। आजीवन उत्सवों में सम्मिलित होते रहे और एक बौद्ध भिक्षुक उनके घर पर प्रत्येक वृहस्पतिवार को भिक्षा प्राप्त करता रहा।

लखनऊ की बहुत सी धार्मिक तथा सामाजिक संस्थाओं के स्थापन व संचालन में बाबूजी का विशेष हाथ रहा और वह उनका ऋण बराबर मानते रहे।

(१) थियोसोफिकल सोसाइटी का शैशव काल लखनऊ में बाबूजी के समय में समाप्त हुआ। मिसेज ऐनीं वैसेन्ट व डा० भगवानदास उनके व्यक्तिगत मित्र थे।

(२) (स्वामी) रामतीर्थ मिशन को भी बाबूजी का सहयोग विशेष रूप से प्राप्त हुआ।

(३) गीता—प्रचारणी-सभा में भी बाबूजी ने बहुत काम किया।

(४) सामाजिक प्रश्नों व धार्मिक अधिवेशनों के लिए लखनऊ के अमीनुद्दौला पार्क में गंगा प्रसाद मेमोरियल हाल व पुस्तकालय बनवाने व उसको प्रेरणा देने में बाबूजी अथक परिश्रम करते रहे।

(५) श्री देवीलाल धर्मशाला श्री ईश्वरी प्रसाद विल्डिंग ट्रस्ट, महिला विद्यालय नारी समिति में उनकी निस्वार्थ सेवा उनको लखनऊ नगर वासियों को हृदय से भुलाने नहीं देगी।

उपरोक्त प्रकार से वावूजी ने सिद्ध कर दिखाया कि जो मनुष्य अपनी विचार धारा और सेवाओं को किसी व्यक्ति या धर्म विशेष में ही सीमित रखता है वह हिन्दू धर्म की वास्तविक बुनियाद 'वसुधैव कुटम्बकम' को भूल जाता है। मनुष्य, कोई भी मनुष्य, उसी एकमात्र पिता का पुत्र है जो सबका उद्गम और सबका अन्त है।

अब वावू जी के जीवन काल की कुछ विशेष तिथियाँ दी जाती है।

(१) जन्म १८६७ ई० में हुआ।

(२) रुड़की इन्जीनियरिंग कालेज से सब ओवरसियर परीक्षा विशेष योग्यता प्राप्त करते हुए १८९० में उत्तीर्ण की।

(३) १८६१ से १९१२ तक लखनऊ नगर पालिका में ओवरसियर व सुपरवाइजर रहे।

(४) सन् १६१० में उन्हें अमीनावाद पार्क की स्कीम व डिजाइन पर एक १० तोले सोने का तकमा व ५००) पुरस्कार मिले।

(५) सन् १९११ में नगर की सफाई के बारे में उनके कुछ सुझावों की सराहना की गई और ५०८) पुरस्कार रूप में भेंट किये गये।

(६) सन् १९१२ में लखनऊ इम्प्रूवमेन्ट ट्रस्ट की सेवाओं पर १०००) का पुरस्कार दिया गया।

(७) चूंकि उन्होंने युक्त प्रान्त की राजधानी लखनऊ को इतना सुन्दर बनाया इसलिए विहार प्रान्त की राजधानी पटना ( बाकीपुर ) को सजाने संवारने के लिए उनकी नियुक्ति १९१३ में पटना नगर पालिका में इन्जीनियर के पद पर हुई। सात वर्ष यहाँ रहकर इन्होंने बाँकीपुर नगर व पटना विश्वविद्यालय का निर्माण कराया तथा उसको सजाया संवारा।

(८) सन् १९२० से १९२२ तक इम्प्रूवमेन्ट ट्रस्ट इन्जीनियर लखनऊ फिर रहे।

(९) अक्टूबर १९२२ से नवम्बर १९२५ तक वह अलवर नरेश की सेवा में रहे। जिस किसी विभाग में अलवर नरेश गड़बड़ी पाते थे वहाँ ही भेज देते थे। उनका स्थान परिवर्तन जल्दी २ होता रहा और इतनी जल्दी वह विगड़े हुए विभाग को सम्हालते थे कि उनकी बुद्धि व कौशल की व्यापकता यह बात देखने से ज्ञात होती है कि उन्हें वह—२ काम भी मिले जिनकी उनसे कदापि आशा नहीं की जा सकती थी। कभी२ तो कई पद एक साथ निभाये।

(१०) इस प्रकार बाबूजी ने १९२५ में अवकाश प्राप्त किया परन्तु फिर भी आजीवन कन्सल्टिंग इंजीनियर की हैसियत से बड़ी-बड़ी इमारतों के नकशे बनाते रहे और अन्ततक काफी रुपया कमाते रहे।

(११) जुलाई १९५७ में उन्होंने केवल तीन मास रोगी रहकर अनन्त विश्राम ग्रहण किया। इन्होंने बहुत बड़ा कुटुम्ब छोड़ा। जिसमें तीन पुत्र और पाँच कन्यायें थीं। सब से बड़े पुत्र राय साहब डाक्टर राम स्वरूप अग्रवाल हैं। ये भी भारतवर्ष के अनेक स्थानों में हेल्थ अफसर के पद पर नियुक्त रहे और विदेश यात्रा इंग्लैण्ड व अमेरिका की कई बार की। दूसरे पुत्र श्रीलक्ष्मी स्वरूप और सब से छोटे श्रीनारायण स्वरूप है। ये लोग भी ऊँचे पदों पर नियुक्त रहे तथा हैं। इनके अतिरिक्त बाबूजी के पौत्र तथा दौहित्र भी बड़े आनन्द से ऊँचे पदो पर हैं। ये सब बाबूजी के पुण्य का प्रभाव है।

१० - ३ - श्री रामजमनादेन्च

———

# निवेदन

## सरसइ ब्रह्म विचार प्रचारा ।

सर्व दुःखों का अत्यन्ता भाव चाहनेवाले को सब दुःखों का मूल जानना परमावश्यक है॰ क्योंकि कारणाभावात कार्याभावः । ( वैशेषिक दर्शन १।२।१) अर्थात् कारण के अभाव होनेपर ही कार्य की अत्यन्त निवृत्ति होती है । जैसे स्वप्न के सर्व दुखों का कारण जाग्रत का अविचार है उसी प्रकार स्वप्नवत मिथ्या जाग्रत के सर्व दुःखों का कारण सर्वात्मा सर्वाधिष्ठान सच्चिदानन्द ब्रह्म राम का अविचार है । इसीलिए—

'जग मँह सर्प विपुल भय दायक होय प्रगट अविचारे ।
बहु आयुध धरि बल अनेक करि हारिय मरै न मारे ॥ विनयपत्रिका

'मोह सकल व्याधिन कर मूला' मानस का भी सिद्धान्त है ।

आत्मैक्य बोधेन विना विमुक्तिर्न सिध्यति ब्रह्म शतान्तरेऽपि ॥ (विवेक चूड़ा॰)

अर्थात् ब्रह्मविचार के विना किसी साधन से भी कभी मुक्ति नहीं हो सकती । 'तस्माजीव परात्मानौ सर्वदैव विचारयेत' । ( पंचदशी ) परन्तु वह भव भय हारिणि परमानन्दप्रदा ब्रह्मविचार रूपी सरस्वती श्रीरामचरित मानस की भक्ति रूपी गंगा और कर्मकथा रूपी जमुना के बीच में उसी प्रकार गुप्त है जैसे दूध में घृत तिलों में तेल तथा काष्ठ में अग्नि गुप्त है । अतः श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ श्री वेदान्ती जी महाराज ने मुमुक्षुओं के कल्याणार्थ अपने अलौकिक तप से इस 'मानस सरस्वती' में पद पद पर ब्रह्म विचार रूपी गुप्त सरस्वती को प्रगट कर दिया है । मुझे पूर्ण विश्वास है कि भक्ति रूपी गंगा और कर्मकथा रूपी यमुना के भक्त इस ब्रह्मविचार रूपी मानस सरस्वती के दर्शन से निश्चय ही सर्वदुःखों की अत्यन्त निवृत्ति और परमानन्द सर्वात्मा ब्रह्म राम की प्राप्ति करेंगे । अन्त में बालकों के हितार्थ 'बालबोध प्रश्नोत्तरी' और प्रारम्भ में नित्य मनन करने योग्य मृत्यु से निर्भय करनेवाले ३२ मन्त्र भी जोड़ दिये गये हैं ।

विनीत—

सूर्य भवन, छोटी पियरी, वाराणसी ।

सूर्यदेव वर्मा
रिटायर्ड डिप्टी कमिश्नर C. W.

## नित्य मनन करने योग्य काल से निर्भय करनेवाले मन्त्र

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥१

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वाभविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ २

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्त मध्यानि भारत ।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥ ३

देही नित्यमवध्योऽयं देहेसर्वस्य भारत ।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि नत्वं शोचि तुमर्हसि ॥ ४

मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय ।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रेमणि गणा इव ॥ ५

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्त मूर्तिना ।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्वस्थितः ॥ ६

न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम् ।
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूत भावनः । ७

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः ।
वेद्यं पवित्र मोंकार ऋक्साम यजुरेव च ॥ ८

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत ।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीज मव्ययम् ॥ ९

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते ।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भाव समन्विताः ॥१०

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः ।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च ॥११

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः ।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः ॥१२ (भगवद्गीता)

सर्वात्मकोऽहं सर्वोऽहं सर्वातीतोऽहमद्वयः ।
केवलाखंड वोधोऽहमानन्दोऽहम निरन्तरः ॥१३

सर्वाधारं सर्वस्तु प्रकाशं सर्वाकारं सर्वगं सर्वशून्यम् ।
नित्यं शुद्ध निश्चलं निर्विकल्पं ब्रह्माद्वैतं यत्तदेवाहमस्मि ॥१४

जलेवापि स्थले वापि लुठत्वेष जडात्मकः ।
नाहं विलप्ये तद्धर्मैर्घटधर्मैर्नभो यथा ॥१५

न मे देहेन सम्बन्धो मेघेनेव विहायसः ।
अतः कुतो मे तद्धर्मा जाग्रत स्वप्न सुषुप्तयः ॥१६ (विवेक चूड़ा०)

घट नष्टे यथा व्योम व्योमैव भवति स्वयम् ।
तथैवोपाधि विलये ब्रह्मैव ब्रह्म वित्स्वयम् ॥१७

घटावभासको भानुर्घट नाशे न नश्यति ।
देहावभासकः साक्षी देहनाशे न नश्यति ॥१८

चिद्र पत्वान्न मे जड्यम् सत्यत्वान्नानृतंमम् ।
आनन्दत्वान्न मे दु:खमज्ञानाद्भाति सत्य वत ॥१९

कालत्रये यथा सर्पोरज्जो नास्ति तथा मयि ।
अहंकारादि देहान्तं जगन्नास्त्य हमद्वयः ॥२०
( आत्म प्रबोध उप० )

स्थाणुर्नित्यः सदानन्दः शुद्धो ज्ञान मयोऽमलः ।
आत्माहं सर्वभूतानां विभुः साक्षी न संशयः ॥२१

नाहं देहो जन्म मृत्यु कुतो मे, नाहं प्राणः क्षुत्पिपासे कुतो मे ।
नाहं चेतः शोक मोहौ कुतो मे, नाहं कर्तावन्ध मोक्षौ कुतो मे ॥२२

सत्यानन्द स्वरूपोऽहं ज्ञानानन्द घनोऽस्म्यहम् ।
विज्ञानमात्र रूपोऽह सच्चिदानन्द लक्षणः ॥२३ (तेजोविन्दु उप०)

मरु भूमौ जलं सर्वं मरु भूमात्र मेवतत ।
जगत्त्रयमिदं सर्वं चिन्मात्रं स्वविचारतः ॥२४ ( महोपनिषद )

त्रिषु धामसु यद्भोग्यं भोक्ता भोगश्च यद्भवेत।
तेभ्यो विलक्षणः साक्षी चिन्मात्रोऽहं सदा शिवः ॥२५

जाग्रत्स्वप्न सुषुप्तयादि प्रपंचं यत्प्रकाशते।
तद्ब्रह्महमिति ज्ञात्वा सर्वं वन्धैः प्रमुच्यते ॥२६ ( कैवल्य उ० )

सोहं ब्रह्म न संसारी न मत्तो अन्यः कदाचन।
मत्तोऽन्यदस्ति चेन्मिथ्या यथा मरु मरीचिका ॥२७

स्वप्नदेहो यथाध्यस्तस्तथैवायं हि देहकः।
अध्यस्तस्य कुतो जन्म जन्माभावे कुतः स्थितिः ॥ २८ (नादविन्दु उप०)

यथा स्वप्न मयोजीवो जायते मृयतेपि च।
तथा जीवाऽमी सर्वे भवन्ति न भवन्ति च॥ २९

न निरोधो न चोत्पत्तिर्न वद्धो न च साधकः।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता ॥ ३०(मांडूक्य कारिका)

इदं ज्ञान मुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः।
सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये नव्यथन्ति च ॥ ३१ ( भगवद्गीता )

स्वयं भूत्वा स्वयं मृत्वास्वयमेवाविशिष्यते ॥ ( श्रुति )३२

# शुद्धि पत्र

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| १ | ३ | ल | लं |
| १ | ११ | व | वं |
| ३ | ४ | वलक | वलकि |
| ४ | १० | पनि | पुनि |
| ६ | ११ | हे | है |
| १० | १६ | सा | सी |
| १६ | ८ | बी | बि |
| १६ | ६ | सब | सर्वं |
| २३ | १३ | मेरी | मेरा |
| २४ | १३ | रतन | ज्ञान |
| २४ | २१ | में लिया | में जन्म लिया |
| ३५ | ३ | अडज | अंडज |
| ३६ | १० | रा | री |
| ५२ | ३ | नाम | नाप |
| ५४ | १० | वधु | वंधु |
| ५४ | १६ | माई | भाई |
| ५५ | १० | भटत | भेंटत |
| ६१ | ३ | अबगुब | अबगुन |
| ,, | ,, | सकट | संकट |
| ६१ | ८ | तुम्हरि | तुम्हहिं |
| ६२ | १६ | पातनी | पतिनी |
| ६६ | ४ | पति | पहिं |
| ६६ | ६ | सुनत | सुनत |
| ७० | १६ | अध्यस्य | अध्यस्त |

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| ७४ | २३ | हो | हे |
| ७६ | २४ | जतनी | जननी |
| ८२ | १६ | सोहावा | सोहावन |
| ८३ | १६ | सगन | सगुन |
| ८८ | २० | नामझी | नासमझी |
| ११३ | ३ | श्रात | श्रति |
| १२२ | ५ | प्रभ | प्रभु |
| १२४ | ५ | जीवमुक्ति | जीवन्मुक्ति |
| १२५ | २० | पारमार्थं | परमार्थ |
| १२८ | १८ | श्रद्वतीय | श्रद्वितीय |
| १३१ | १० | चन्दमा | चन्द्रमा |
| १३४ | ४ | उरगाई | उरगारी |
| १३४ | १६ | श्राँसू | श्रासू |
| १४० | १ | भावान | भावना |
| १४३ | १५ | घन | धन |
| १४४ | ५ | विशिखि | त्रिशिखि |
| १४५ | १२ | गजउ | गर्जेउ |
| १४७ | २ | दान्ह | दीन्ह |
| ,, | ३ | श्राशा | श्राज्ञा |
| १४८ | ६ | हरष | हरषे |
| १४६ | ५ | का | की |
| १६१ | १७ | उत्पन | उत्पन्न |
| १६५ | १५ | सर्वत्र | सर्वं |
| १६६ | १६ | विख्यात | विख्याता |
| १६७ | १४ | परा | परी |

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| १६८ | ११ | अधमाहि | अधमाई |
| १६९ | ४ | तो | है |
| ,, | २६ | सविदानन्द | सच्चिज्ञानन्द |
| १७० | १० | सुघ | सुर |
| ,, | १६ | विनति | विनीत |
| १७१ | ११ | बचनमृतकाया | वचनामृत को पी |
| ,, | २२ | विडान | विज्ञान |
| १७३ | ६ | रधुवति | रघुपति |
| १७६ | २२ | श्रुतिपुरान जो गाव | प्रभुप्रसाद कोउ पाव |
| ,, | १५ | ने | × |
| १८६ | १२ | घृत | घृति |
| १९० | १३ | हर | पर |
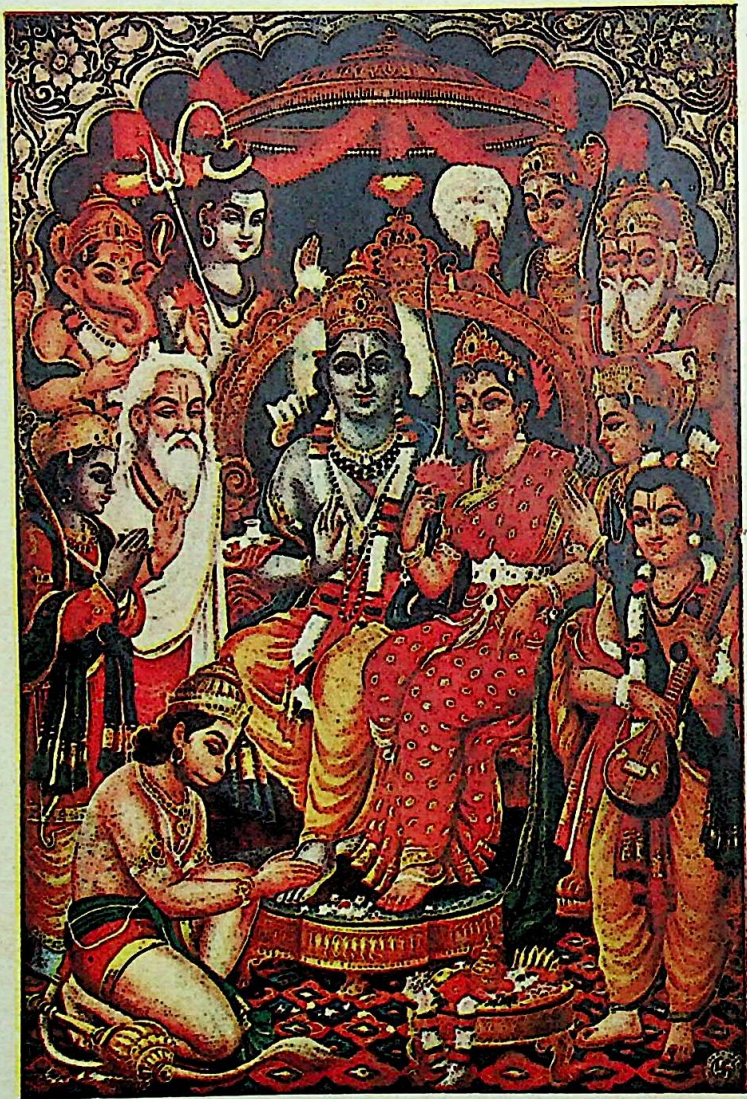
श्रीराम राज्य अभिषेक

# मानस सरस्वती

भवानी शंकरौ वन्दे श्रद्धा विश्वास रुपिणौ ।
याभ्यांविना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम् ॥
यन्मायावशवर्ति विश्वमखिल ब्रह्मादि देवासुरा ।
यत्सत्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः ।
यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां
वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम् ॥

दोहा—गिरा अर्थ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न ।
वन्दौं सीताराम पद, जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न ॥

सियाराम मय सब जग जानी । करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी ।

दोहा—जड़ चेतन जग जीव जत, सकल राम मय जानि ।
वदउँ सबके पद कमल, सदा जोरि जुग पानि ॥
बंदउँ गुरुपद कंज कृपा सिन्धु नररूप हरि ।
महा मोह तमपुञ्ज, जासु वचन रवि करनिकर ॥
बंदउँ संत समान चित, हित अनहित नहिं कोइ ।
अंजलि गत सुभ सुमन जिमि, सम सुगंध कर दोइ ॥

भरद्वाज का प्रश्न—

एक बार भरि मकर नहाए। सब मुनीश आश्रमन्ह सिधाए।
जागवलिक मुनि परम विवेकी। भरद्वाज राखे पद टेकी।
सादर चरण सरोज पखारे। अति पुनीत आसन बैठारे।
करि पूजा मुनि सुजसु बखानी। बोले अति पुनीत मृदुवानी।
नाथ एक संशय बड़ मोरे। करगत वेद तत्व सब तोरे।
अस विचार प्रगटउँ निज मोहू। हरहु नाथ करि जनपर छोहू।
राम नाम कर अमित प्रभावा। सन्त पुरान उपनिषद गावा।
राम कवन प्रभु पूछेउँ तोही। कहिअ बुझाइ कृपानिधि मोही।
एक राम अवधेश कुमारा। तिन्हकर चरित विदित संसारा।
नारि विरह दुख लहेउ अपारा। भयउ रोष रन रावन मारा।
दो०—प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ, जाहि जपत त्रिपुरारि।
सत्य धाम सर्वग्य तुम्ह, कहहु विवेक विचार॥
जैसे मिटै मोर भ्रम भारी। कहहु सो कथा नाथ विस्तारी।

भरद्वाज के प्रश्न का तात्पर्य यह है कि मेरी समझ से जगत को उत्पन्न पालन तथा संहार करनेवाला व्यापक सच्चिदानन्द राम कोई और है और दशरथ का पुत्र राम पञ्चक्लेशों से युक्त जीव कोटि का होने से उस सच्चिदानन्द ब्रह्म राम से अन्य है। परन्तु बहुत लोग अवधेशकुमार राम को ही सच्चिदानन्द ब्रह्म का अवतार मानते हैं जो मेरी समझ से असम्भव है।

कृपया इसका निर्णय कर दीजिए। हे गुरुदेव ! मैं शिष्य भाव से प्रश्न करता हूँ, मेरे इस भारी भ्रम को दूर कीजिए क्योंकि जब तक

राम के विषय में जीव को मोह सन्देह भ्रम बना रहेगा तबतक जन्म मरण के चक्र से कदापि नहीं छूट सकता।

श्रीयाज्ञवल्क्यजी का उत्तर—

जागबलाक बोले मुसुकाई। तुमहि विदित रघुपति प्रभुताई।
राम भगत तुम्ह मनक्रम बानी। चतुराई तुम्हारि मैं जानी।
चाहहु सुनै राम गुन गूढ़ा। कीन्हिहु प्रश्न मनहुं अति मूढ़ा।
तात सुनहु सादर मन लाई। कहउँ राम कै कथा सुहाई।
राम कथा शशिकिरन समाना। सन्त चकोर करहिं जेहि पाना।
ऐसेइ संशय कीन्ह भवानी। महादेव तब कहा बखानी।

भवानी का सन्देह—

दो०—ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज, अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होइ नर, जाहि न जानत वेद॥

बैठे सोह काम रिपु कैसे। धरे शरीर शान्त रस जैसे।
पारवती भल अवसर जानी। गई शम्भु पहिं मातु भवानी।
विश्वनाथ मम नाथ पुरारी। त्रिभुवन महिमा विदित तुम्हारी।
जौं मो पर प्रसन्न सुखरासी। जानिय सत्य मोहि निज दासी।
तौ प्रभु हरहु मोर अज्ञाना। कहि रघुनाथ कथा विधि नाना।

पारवतीजी के प्रश्न—

प्रभु जे मुनि परमारथ वादी। कहहिं राम कहुं ब्रह्म अनादी।
तुम्ह पुनि राम-राम दिनराती। सादर जपहु अनंग आराती।

राम सो अवध नृपति सुत सोई । की अज अगुन अलख गति कोई ।

दो०—जो नृप तनय त ब्रह्म किमि, नारि विरह मति भोरि ।
देखि चरित महिमा सुनत, भ्रमति बुद्धि अति मोरि ॥

जो अनीह व्यापक बिभु कोऊ । कहहु बुझाइ नाथ मोहि सोऊ ।
कहहु पुनीत राम गुण गाथा । भुजग राज भूषन सुरनाथा ।
जदपि जोषिता नहिं अधिकारी । दासी मन क्रम बचन तुम्हारी ।
गूढ़उ तत्व न साधु दुरावहिं । आरत अधिकारी जँह पावहिं ।
अति आरति पूछउँ सुर राया । रघुपति कथा कहहु करि दाया ।
प्रथम सो कारन कहहु विचारी । निर्गुन ब्रह्म सगुन वपुधारी ।
पुनि प्रभु कहहु राम अवतारा । बालचरित पनि कहहु उदारा ।
कहहु जथा जानकी विवाही । राज तजा सो दूषन काहीं ।
बन बसि कीन्हे चरित अपारा । कहहु नाथ जिमि रावन मारा ।
राज बैठि कीन्हीं बहु लीला । सकल कहहु संकर सुखसीला ।

दोहा—बहुरि कहहु करुना यतन, कीन्ह जो अचरज राम ।
प्रजा सहित रघुवंश मणि, किमि गवने निज धाम ॥

पुनि प्रभु कहहु सो तत्त्व बखानी । जेहि बिज्ञान मगन मुनि ध्यानी ।
भगति ज्ञान बिज्ञान बिरागा । पुनि सब बरनहु सहित बिभागा ।
औरउ राम रहस्य अनेका । कहहु नाथ अति बिमल बिवेका ।
जो प्रभु मैं पूछा नहिं होई । सोउ दयालु राखहु जनि गोई ।

श्री यज्ञवल्क्यजी ने भरद्वाज जी से कहा कि जो तुमने प्रश्न किया है इसको तथा अन्य अनेक प्रश्नों को जगज्जननी भवानी ने शंकर भगवान् से पूछा है।

अतः शंकर भगवान् ने भवानी जी के प्रश्नों का उत्तर देते हुए उनको रामचरितमानस सुनाया है। उसको सुनो। रामचरितमानस आरम्भ करते समय भगवान् शंकर स्वरूप से अभिन्न सर्वाधिष्ठान सर्वात्मा सच्चिदानन्द राम की वन्दना करते हैं। फिर कथा की महिमा सुनाते हैं।

झूठहु सत्य जाहि बिनु जाने। जिमि भुजंग बिनु रजु पहिचाने।
जेहि जाने जग जाई हेराई। जागे जथा सपन भ्रम जाई।
वंदउँ बालरूप सोई रामू। सब विधि सुलभजपतजिसुनामू।
मंगल भवन अमंगल हारी। द्रवउ सो दशरथ अजिर विहारी।
करि प्रनाम रामहिं त्रिपुरारी। हरषि सुधा सम गिरा उचारी।
धन्य धन्य गिरिराज कुमारी। तुम्ह समान नहिं कोउ उपकारी।
पूछेहु रघुपति कथा प्रसंगा। सकल लोक जग पावनि गङ्गा।
तुम्ह रघुबीर चरन अनुरागी। कीन्हिहु प्रश्न जगत हित लागी।
जिन्ह हरि कथा सुनी नहिं काना। श्रवनरन्ध्रअहि भवनसमाना।
नयनहिं संत दरस नहिं देखा। लोचन मोर पंख कर लेखा।
ते सिर कटु तुंबरि समतूला। जे न नमत हरि गुरु पदमूला।
जिन्हहरिभगतिहृदय नहिंआनी। जीवत सव समान ते प्रानी।
जो नहिं करहिं राम गुनगाना। जीह सो दादुर जीह समाना।
कुलिश कठोर निठुर सोइछाती। सुनि हरिचरित न जो हरषाती।

गिरिजा सुनहु राम कै लीला । सुर हित दनुज विमोहन शीला ।
राम कथा सुन्दर करतारी । संशय विहग उड़ावन हारी ।
जथा अनन्त राम भगवाना । तथा कथा कीरति गुनगाना ।
तदपि जथाश्रु त जसिमति मोरी । कहिहउँ देखि प्रीति अति तोरी ।
एक बात नहिं मोहिं सुहानी । जदपि मोहवश कहेहु भवानी ।
तुम जो कहा राम कोउ आना । जेहिश्रुतिगाव धरहिंमुनिध्याना ।

दोहा—कहहिं सुनहिं अस अधम नर, ग्रसे जो मोह पिशाच ।
पाषंडी हरिपद विमुख, जानहिं झूठ न सांच ॥

सो० अस निज हृदय विचारि, तजु संसय भजु रामपद ।
सुनु गिरिराज कुमारि, भ्रम तम रविकर वचन मम ।

श्रीपारवतीजी के सन्देह का तात्पर्य यह है कि जो निर्विकार अखंड अजन्मा नाम रूप से रहित निर्गुण, निराकार व्यापक ब्रह्म है, वह एक देह में कैसे कैद हो सकता है। संसार में परिच्छिन्न जीव कर्म वश देह को धारण करते हैं परन्तु निर्गुण निराकार व्यापक सच्चिदानन्द ब्रह्म का देह धारण करना नितान्त असम्भव प्रतीत होता है जैसे आकाश को मुठ्ठी में बन्द करना असम्भव है।

दूध जैसे दही हो जाता है उसी प्रकार यदि निर्गुण का ही सगुण रूप में परिणाम माना जाये तो फिर निर्गुण का अभाव हो जायेगा तथा विकारी होना पड़ेगा। श्रीपारवतीजी की यह शंका सुनकर अपने इष्ट की वन्दना में ही भगवान् शंकरने समस्त शंकाओं का मूलोच्छेद कर दिया। वन्दना में यह संकेत है कि सारे प्रश्न संसार है तभी सम्भव हैं। सुषुप्ति और तुरीय में प्रश्नों का होना असम्भ है। संसार के

आदि अन्त में सजातीय विजातीय स्वगत भेद से रहित केवल एक अद्वितीय सच्चिदानन्द ब्रह्म राम ही शेष रहता है। जैसे समस्त तरंगे उत्पन्न होने के पहले जल थीं और नाश होने के अनन्तर भी जलरूप से शेष रहती हैं उसी प्रकार सृष्टि उत्पन्न होने के पहले केवल निर्गुण निराकार सच्चिदानन्द ब्रह्म राम के रूप में ही थी तथा नाश होनेके अनन्तर सच्चिदानन्द ब्रह्म राम रूप से शेष रहती है। अतः सच्चिदानन्द राम ही जगत् के निमित्त और उपादान कारण उसी प्रकार हैं जैसे जाले का निमित्त और उपादान कारण मकड़ी है।

२—जेहि सृष्टि उपाई त्रिविध बनाई संग सहाय न दूजा।

अतः उपादान कारण भी होने से सच्चिदानन्द ब्रह्म अपने कार्य संसार में उसी प्रकार व्यापक हैं "जथा पट तन्तु घटमृत्तिका सर्प स्रग दारु करि कनककटकाङ्गदादी ( विनय पत्रिका )। अतः—

व्यापक विश्व रूप भगवाना। तेहि धरि देह चरित कृत नाना॥

जैसे स्वप्न साक्षी ही स्वप्न रूप भी होता है और उसमें व्यापक भी होता है और वही स्वप्नके अनेक मन्दिरों में कहीं शिव रूप में, कहीं विष्णु रूप में, कहीं अनेक देवताओं के रूप में प्रतीत होता है और सर्वातीत भी रहता है। उसी प्रकार जाग्रत जगतका साक्षी सच्चिदानन्द ब्रह्म राम जगतमें व्यापक भी है और सर्वरूप होनेसे व्याप्य भी है और रज्जु सर्पवत विवर्त रूप से सर्वरूप होने से सर्वातीत भी है।

अतवद्य अखंड न गोचर गो, सब रूप सदा सब होय न गो।
इति वेद वदन्ति न दन्त कथा, रवि आतप भिन्न न भिन्न यथा।

व्यापक व्याप्य अखंड अनंता। अखिल अमोघ शक्ति भगवंता।

अतः जैसे स्वप्न द्रष्टा अपनी माया से अपने को स्वप्न रूप दिखला देता है तथा रज्जु अपनेको सर्परूप में दिखला देती है उसी प्रकार सच्चिदानन्द राम अपने आपको माया से जगत् रूप में दिखला रहा है। हे पारवती! जैसे रस्सी को जबतक नहीं पहिचाना तबतक सर्प का भान रहता है और सर्पको सत्य मानकर भयकम्पादि भी होते हैं परन्तु रस्सी का प्रकाश में साक्षात्कार होते ही यह निश्चय होता है कि सर्पका तीनों काल में रज्जु देश में अत्यन्ताभाव है उसी प्रकार सच्चिदानन्द राम का साक्षात्कार होते ही यह निश्चय हो जाता है कि जगत् न पहले था न अब है और न आगे होगा। जैसे जागने के पहले स्वप्न तीनों काल में नहीं है ऐसा जानना असम्भव है उसी प्रकार जब तक निर्गुण निराकार व्यापक सच्चिदानन्द ब्रह्म राम का अपरोक्ष ज्ञान नहीं होता तबतक जगत तीनों काल में नहीं है केवल 'भास सत्य इव मोह सहाया' ऐसा निश्चय होना असम्भव है। परन्तु जैसे जागते ही स्वप्न का अत्यन्ताभाव निश्चय हो जाता है उसी प्रकार सर्वाधिष्ठान सर्वात्मा सच्चिदानन्द ब्रह्म राम का अनुभव होते ही जगतका अत्यन्ताभाव निश्चय हो जाता है। हे पारवती!

१—रजत सीप महुँ भास जिमि, जथा २भानु कर बारि।
यदपि मृषा तिहुं काल सोइ, भ्रम न सकै कोउ टारि।

यहिविधि जगहरिआश्रित रहई। यदपि असत्य देत दुख अहही।
ज्यों सपने सिर काटै कोई। बिनु जागे दुःख दूरि न होई।
जासु कृपा अस भ्रम मिटि जाई। गिरिजा सोइ कृपालु रघुराई।

हे उमा जैसे जाग्रत में खड़े होकर स्वप्न सिद्ध नहीं हो सकता। उसी प्रकार अवधेश कुमार भगवान् राम के परमार्थ स्वरूप में स्थित

होकर यह जाग्रत जगत् भी सिद्ध नही हो सकता। पहले जगत को सिद्ध कर लो तब नाना प्रकार के प्रश्न करना भी उचित हैं। जागने पर स्वप्न के समस्त प्रश्न जिस प्रकार समाप्त हो जाते हैं उसी प्रकार परमात्मा सच्चिदानन्द ब्रह्म राम को पहिचानते ही कोई प्रश्न शेष नहीं रहेगा। जैसे स्वप्न की स्त्री स्वप्न में अपने स्वप्न पति से यह प्रश्न करे कि इस जगत का जो ईश्वर इस जगत में व्यापक है वह कैसे देह धारण कर सकता है उसी प्रकार हे उमा! तुम्हारा भी प्रश्न है कि इस जगत में जो व्यापक निराकार निर्विकार ईश्वर है वह कैसे देह धारण कर सकता है।

हे उमा! जैसे स्वप्न के ईश्वर साक्षी आत्मा में स्वप्न में प्रगट होने की सामर्थ्य है उसी प्रकार जाग्रत जगत के ईश्वर साक्षी स्वयं प्रकाश सर्वाधिष्ठान सर्वात्मा सच्चिदानन्द ब्रह्म राम में भी संसार में अवतार लेने की सामर्थ्य है। सच्चिदानन्द ब्रह्म राम को केवल कौशल्या और देवकी की गोद में ही राम और कृष्ण के रूप में अवतार लेने की सीमित सामर्थ्य नहीं है बल्कि स्वप्न व रज्जु सर्पवत संसार रूप तथा जीव रूप होने की भी सामर्थ्य है।

हे उमा! ऐसा जानकर तुम अवतार में सन्देह मत करो। भगवान में अनेक रूप होने की सामर्थ्य तुम सती शरीर में देख भी चुकी हो। यथा :—

सती दीख कौतुक मग जाता। आगे राम सहित श्री भ्राता॥
फिर चितवा पाछे प्रभु देखा। सहित बन्धु सिय सुन्दर वेषा॥
जहँ चितवहिं तहँ प्रभु आसीना। सेवहिं सिद्ध मुनीस प्रवीना।
देखे शिव विधि विष्णु अनेका। अमित प्रभाव एकते एका।
वंदत चरन करत प्रभु सेवा। विविधि वेष देखें सब देवा।

दो० सती विधात्री इन्दरा, देखीं अमित अनूप ।
जेहि जेहि वेष अजादि सुर, तेहि तेहि तन अनुरूप ॥

जीव चराचर जो संसारा । देखे सकल अनेक प्रकारा ।
अवलोके रघुपति बहुतेरे । सीता सहित न वेष घनेरे ।
सोइ रघुवर सोइ लछिमन सीता । देखि सती अति भई सभीता ।
हृदय कम्पमन सुधि कछु नाहीं । नयन मूदि बैठी मग माहीं ।
बहुरि विलोकेउ नयन उघारी । कछु न दीख तहँ दच्छ कुमारी ।

हे उमा ! जैसे सती शरीर में तुमको भगवान रामने माया दिखलाई थी उसी प्रकार नारद को भी अपनी माया दिखलाकर उनके काम जीतने के अभिमान को नाश किया ।
यथा :—

श्री पति निज माया तब प्रेरी । सुनहुं कठिन करनी तेहि केरी ।

दो० विरचेउ मग महुं नगर तेहि, सत जोजन विस्तार ।
श्री निवासपुर ते अधिक, रचना विविधि प्रकार ॥

बसहिं नगर सुन्दर नर नारी । जनु बहुमनसिज रति तनुधारी ।
तेहि पुर बसइ सीलनिधि राजा । अगनित हय गय सेन समाजा ।
विश्वमोहनी तासु कुमारी । श्री विमोह जिसु रूप निहारी ।
करइ स्वयंवर सो नृपबाला । आये तहँ अगनित महिपाला ।
मुनि कौतुकी नगर तेहि गयऊ । पुरवासिन्ह सब पूछत भयऊ ।
सुनि सब चरित भूप गृह आए । करि पूजा नृप मुनि बैठाये ।

दो० आनि दिखाई नारदहि, भूपति राजकुमारि ।
कहहु नाथ गुनदोष सब, एहिके हृदय बिचारि ॥

देखि रूप मुनि बिरति बिसारी । बड़ी बार लग रहे निहारी ।
लच्छन तासु बिलोकि भुलाने । हृदय हरष नहिं प्रगट बखाने ।
जो एहि बरइ अमर सोइ होई । समर भूमि तेंहि जीत न कोई ।
सेवहिं सकल चराचर ताही । बरइ सीलनिधि कन्या जाही ।
सुता सलच्छन कहि नृप पाहीं । नारद चले सोचमन माहीं ।
करौं जाइ सोइ जतन बिचारी । जेहि प्रकार मोहि बरै कुमारी ।
जपतप कछु न होइ तेहि काला । हे बिधि मिलइ कवनबिधि बाला ।
हरि सन माँगौं सुन्दरताई । होइहि जात गहरुअति भाई ।
बहुविधिविनयकीन्हितेहिकाला । प्रगटेउ प्रभु कौतुकी कृपाला ।
अति आरति कहिकथा सुनाई । करहु कृपा करि होहु सहाई ।
आपन रूप देहु प्रभु मोहीं । आन भाँति नहिं पावौं ओही ।
गवने तुरत तहाँ रिषिराई । जहाँ स्वयंबर भूमि बनाई ।
निज-निज आसन बैठे राजा । बहु बनाव करि सहित समाजा ।
मुनि हित कारन कृपानिधाना । दीन्ह कुरूप न जाइ बखाना ॥
काहुनलखा सो चरित विसेषा । सो स्वरूप नृप कन्या देखा ।
मर्कट वदन भयंकर देही । देखत हृदय क्रोध भा तेही ।
जेहि दिशिबैठे नारद फूली । सो दिशितेंहि न विलोकीभूली ।
धरि नृपतनु तँह गयउकृपाला । कुंअरि हरषि मेलेउ जयमाला ।
दुलहिन लैगे लच्छि निवासा । नृपसमाज सब भयउ निरासा ।

पुनि जल दीखरूप निजपावा । तदपि हृदय सन्तोष न आवा ।
फरकत अधर कोप मनमाहीं । सपदि चले कमलापति पाहीं ।
देहउँ श्राप कि मरिहउँ जाई । जगत मोरि उपहास कराई ।
बीचहिं पन्थ मिले दनुजारी । संग रमा सोइ राजकुमारी ।
बोले वचन मधुर सुरसाइ । मुनि कँह चले विकलकी नाईं ।
सुनत वचनउपजाअति क्रोधा । माया वसन रहा मन बोधा ।
परमस्वतंत्र न सिरपर कोई । भावइ मनहिंकरहु तुम्ह सोई ।
कपिआकृतितुम्ह कीन्ह हमारी । करिहहिं कीस सहाय तुम्हारी ।
जब हरि माया दूरी निवारी । नहिं तहँ रमा न राज कुमारी ।
मम अपकार कीन्हतुम्ह भारी । नारि विरह तुम होव दुखारी ।
तब मुनिअतिसभीतहरिचरना । गहें पाहि मनतारति हरना ।
मृषा होउ मम श्राप कृपाला । मम इच्छा कह दीन दयाला ।

हे उमा ! जैसे दूध दही रूपमें परणित होता है बताओ क्या सच्चिदानन्द भगवान राम भी उसी प्रकार से अनेक रूपों में परणित हो गये थे । जैसे सूर्य बिना परिणामको प्राप्त हुए ही अनेक प्रतिबिम्बों के रूपों में अपने आपको दिखला देता है उसी प्रकार सच्चिदानन्द राम भी परिणाम को प्राप्त हुए बिना ही अनेक रूप धारण कर सकते हैं ।

यह वड़ि बात राम कहँ नाहीं । जिमिघट कोटि एक रवि छाहीं ।
भुवन अनेक रोम प्रति जासू । यह महिमा कछु बहुत न तासू ।

दो० दिखरावा मातहिं निज, अद्भुत रूप अखंड ।
रोम रोम प्रति राजत, कोटि कोटि ब्रह्मंड ॥

हे उमा ! तत्व दृष्टिसे जीव, ईश्वर तथा जड़ जङ्गम किसी प्राणी का भी सच्चिदानन्द सर्वात्मा सर्वाधिष्ठान राम से वास्तविक भेद नहीं, सब राम के ही स्वरूप हैं।

मेरी दृष्टि में समस्त संसार तथा समस्त जीव और संसार को उत्पन्न पालन करने वाले ब्रह्मा और विष्णु तथा संहार करने वाला मैं शंकर सबके सब सच्चिदानन्द रामके अवतार हैं। यदि कहो फिर परस्पर भेद क्यों प्रतीत होता है उसका उत्तर यह है कि भेद मायाकृत मिथ्या है।

मुधा भेद यद्यपि कृत माया। बिनु हरि जाय न कोटि उपाय।

जैसे स्वप्न साक्षी का स्वप्न संसार से तथा स्वप्न प्राणियों से कल्पित भेद है वास्तव में अभेद है क्योंकि अध्यस्त का अधिष्ठान से वास्तव में अभेद होता है उसी प्रकार जाग्रत जगतके साक्षी सच्चिदानन्द ब्रह्म काजाग्रत जगत से तथा समस्त जड़ जङ्गम प्राणियों से कल्पित भेद और वास्तव में अभेद है। स्वप्न साक्षी आत्मा और जाग्रत साक्षी ब्रह्म राम का भी घटाकाश महाकाशवत वास्तव में अभेद है। नाना घटाकाशोंवत अन्तःकरण उपहित आत्माओंका भी परस्पर उपाधि कृत कल्पित भेद और वास्तविक अभेद है। स्वप्नके जड़चेतन वत जीव जड़का भी भेद कल्पित है। जड़ जड़ का भेद भी उसी प्रकार कल्पित समझना चाहिये जैसे रज्जु में कल्पित माला दण्डादिक का भेद कल्पित है। जैसे स्वप्नमें स्वप्ननरोंके प्रेम के वश में होकर स्वप्नका साक्षी आत्मा उनकी भावनाओंके अनुसार रूप धारण कर सकता है उसी प्रकार यहाँ जाग्रतका साक्षी सच्चिदानन्द ब्रह्म राम भी यहाँ के भक्तों के प्रेमके वश में होकर उनकी भावनाओं के अनुसार रूप धारण कर लेता है।

सगुनहिं अगुनहिं नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध वेदा।
अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेमवश सगुन सोहोई।

अगुन अलेप अमान एक रस । राम सगुन भए भगत प्रेम बस ।

जीवों के मोह के कारण परमात्मा राम विश्वरूप में रज्जु सर्पवत दिखाई पड़ते हैं और भक्तोंके प्रेम के कारण देवकी और कौशल्याकी गोदमें कृष्ण तथा राम रूप में सगुण होकर प्रकट हो जाते हैं। जैसे आकाशमें दो चन्द्रमा देखना भ्रान्ति है उसी प्रकार निर्गुण और सगुण में भेद देखना भ्रान्ति है।

चितव जो लोचन अंगुलि लाए । प्रगट जुगल ससि तेहिके भाए ।

जो गुण रहित सगुण सो कैसे । जल हिम उपल विलग नहिं जैसे ।

जैसे जल बर्फ का रूप धारण करनेपर भी रसरूप जल ही रहा दूध दही वत उसमें परिवर्तन नहीं हुआ । उसी प्रकार निर्गुण निराकार ब्रह्म राम ही सगुणसाकार राम रूपमें प्रकट हुए हैं और परिणामको प्राप्त नहीं हुए क्योंकि साकार रूप से अयोध्या में प्रकट होनेपर भी निर्गुण निराकार रूप से सर्वत्र व्यापक रहते हैं। जैसे अग्नि निराकार रूपसे सर्वत्र रहते हुये भी काष्टादि उपाधि में प्रकट भी हो जाती है उसी प्रकार निर्गुण निराकार सच्चिदानन्द ब्रह्म सर्वत्र व्यापक होते हुए भी सगुण रूप धारण कर लेता है। यथा :

एक दारु गत देखिय एकू । पावक जुग सम ब्रह्म विवेकू ।

भगवान् राम के निर्गुण स्वरूपमें अज्ञान का सूर्य में अन्धकारवत अत्यन्ताभाव है और इसीलिए अज्ञान को दूर करने के लिए ज्ञान की भी आवश्यकता नहीं है क्योंकि वह स्वतः ज्ञानघन हैं।

राम सच्चिदानन्द दिनेशा । नहिं तहँ मोहनिशा लवलेशा ।

सहज प्रकाश रूप भगवाना । नहिं तहँ पुनि विज्ञान विहाना ।

ज्ञान अखंड एक सीतावर । माया वश्य जीव सचराचर ।

राम ब्रह्म व्यापक जगजाना । परमानन्द परेस पुराना ।
राम ब्रह्म चिन्मय अविनासी । सर्व रहित सब उर पुरवासी ।
एक अनीह अरूप अनामा । अज सच्चिदानन्द परधामा ।
व्यापक ब्रह्मअलखअविनासी । चिदानन्द निरगुन गुनरासी ।
मन समेत जेहि जानन वानी । तरकिनसकहिंसकल अनुमानी ।
राम अतर्क्य बुद्धि मनवानी । मत हमार अस सुनहि सयानी ।
महिमा निगम नेतिकहि कहई । जो तिहुं काल एकरस रहई ।
सुमिरत जाहि मिटइ अज्ञाना । सोइ सर्वग्य राम भगवाना ।
अकल अनीह अनाम अरूपा । अनुभव गम्य अखंड अनूपा ।
मन गोतीत अमल अविनासी । निर्विकार निरवधि सुखरासी ।
सोइ सच्चिदानन्द घन रामा । अज विज्ञान रूप बलधामा ।
अगुन अदभ्र गिरा गोतीता । सब दरसी अनवद्य अजीता ।
निर्मम निराकार निरमोहा । नित्य निरंजन सुख सन्दोहा ।
प्रकृति पार प्रभु सबउरवासी । ब्रह्म निरीह बिरज अविनासी ।
इहाँ मोहकर कारन नाहीं । रवि सन्मुखतम कबहुंकि जाहीं ।
नयन दोष जा कहँ जब होई । पीत वरन ससिकहुं कह सोई ।
नौकारूढ़ चलत जग देखा । अचल मोहवश आपुहि लेखा ।
बालकभ्रमहिं नभ्रमहिंगृहादी । कहहिं परस्पर मिथ्यावादी ।
मायावश मतिमन्द अभागी । हृदय जमनिका बहुविधिलागी ।
ते सठ हठ वस संसय करहीं । निज अज्ञान राम परधरहीं ।
हर्ष विषाद ज्ञान अज्ञाना । जीवधर्म अहमिति अभिमाना ।

हे उमा : सच्चिदानंन्द राम ज्ञान अज्ञानसे परे हैं। हर्ष विषाद ज्ञान अज्ञान अहंकार जीव के धर्म हैं। जैसे निद्रा से स्वप्न का शरीर स्वप्न की नदी में डूबने लगता है और जाग्रत शरीर चारपाई पर ज्योंका त्यों शान्त पड़ा रहता है. उसी प्रकार भगवान राम हर्षविषाद ज्ञान अज्ञान से रहित सदा एकरस हैं और वे ही निद्रा की भाँति माया से स्वप्नवत जाग्रत जगत में जीवों के रूप में हर्ष विषाद करते हुए से दीखने लगते हैं। जैसे सूर्य स्थिर रहते हुए भी जल में प्रति-बीम्बित होकर चंचल दीखता है उसो प्रकार सच्चिदानन्द राम अन्तः-करणों में प्रतिबिम्बित होकर जीव रूप से हर्ष विषाद व ज्ञान अज्ञान-युक्त से हो जाते हैं। माता कौशल्या को यही ज्ञान देने के लिए भगवान् राम ने बाल्यावस्था में दो रूप दिखलाये। भगवान राम वास्तविक रूप से पालने में सो रहे थे और माया से दूसरा रूप बनाकर पूजाघर में उसी समय भोजन भी करते हुए दिखाई पड़े। एक ही राम के विरोधी धर्मवाले दो रूप देखकर माता कौशल्या चकित हो गईं। यथा :

इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा। मति भ्रम मोर कि आन बिसेषा।

जैसे जल में प्रतिबिम्बित सूर्य दीवार का प्रकाशक होता है उसी प्रकार चिदाभास रूप जीव शरीर मन इन्द्रियों का प्रकाशक है। जैसे तार व कोयला सहज प्रकाशक नहीं विजली व अग्नि के प्रविष्ट होनेपर प्रकाशक हो जाते हैं उसी प्रकार अन्तःकरण में दूसरों को जाननेकी शक्ति स्वाभाविक नहीं क्योंक पंच भौतिक होने से जड़ है परन्तु सच्चिदानन्द ब्रह्म राम के जड़ अन्तःकरणों में जीवरूप से प्रविष्ट होने से ज्ञान शक्ति आ जाती है। जैसे सूर्य के प्रतिबिम्ब में प्रकाश सूर्य का ही होता है उसी प्रकार जीवों में प्रकाश सच्चिदादन्द राम का है। अतः सच्चिदानन्द राम से प्रकाश उधार लेकर चिदाभास रूप से जीव अन्तःकरण का प्रकाशक होता है और जीव से प्रकाश अर्थात् चैतन्यता उधार लेकर अन्तःकरण इन्द्रियों का प्रकाशक होता है और

अन्तःकरणसे प्रकाश उधार लेकर इन्द्रियां शब्दस्पर्श रूप रसगन्ध विषयोंकी प्रकाशक होती हैं। परन्तु सबके प्रकाशक स्वयं प्रकाश सच्चिदानन्द भगवान् राम हैं।

अतः हे उमा! सबके प्रकाशक स्वयं प्रकाश तत्वको रामका स्वरूप जानो, शेष चिदाभास, अन्तःकरण, देवताओं, इंद्रियों और विषयों को प्रकाश्य जगत समझो।

**विषय करन सुरजीव समेता। सकल एक ते एक सचेता।**
**सबकर परम प्रकाशक जोई। राम अनादि अवधपति सोई।**
**जगत प्रकास्य प्रकाशक रामू। मायाधीश ज्ञानगुन धामू।**

हे उमा! सच्चिदानन्द रामको छोड़कर सम्पूर्ण प्रकाश्य जगत रज्जुमें सर्प, सीपमें, चाँदी तथा सूर्य किरणों में मृगजलवत तीनों कालमें असत है परन्तु असत होनेपर भी अज्ञान पर्यन्त सत्यइव प्रतीत होता है जैसे अन्धकारके कारण ठूँठ पुरुष इव प्रतीत होता है।

**जासु सत्यता ते जड़माया। भास सत्य इव मोह सहाया।**

जब जड़, सीप और सूर्य किरणें चाँदी और मृगजलकी सृष्टि कर सकती हैं, तो सच्चिदानन्द सर्वात्मा भगवान् राम जीवों के अविद्याकृत संस्कारों से असत संसार जीवों को अपने में दिखलाये इसमें क्या आश्चर्य है, यदि कहो मृगजलवत असत संसारमें जीवात्मा का जन्म और सच्चिदानन्द रामका अवतार कैसे हो सकता है उसका समाधान यह है कि जैसे स्वप्न में जीवों का जन्ममरण होता है और स्वप्नसाक्षी का भी अवतार सगुण राम और कृष्ण रूपमें हो सकता है उसी प्रकार इस स्वप्नवत जाग्रत जगत में भी जीवों का जन्म और सच्चिदानन्द रामका सगुण रूपमें अवतार हो सकता है। जैसे कुआँमें अन्धा न देखने के कारण गिरता है और उसको निकालनेवाला उसको निकालने के लिए दयावश उस कुएं में उतरता है, उसी प्रकार परमात्मा राम का

संसार में अवतार दयावश जीवोंके उद्धारके लिए होता है और अज्ञानी जीवों का जन्म अविद्यावश कर्मोंको भोगने के लिए होता है। यदि कहो भगवान् अवतार लेकर दया करके सब जीवोंका उद्धार क्यों नहीं कर देते उसका उत्तर यह है कि भगवान राम की दया सर्वत्र समान है परन्तु जिन्होंने कर्म भक्ति ज्ञान से अपना अन्तःकरण मल विक्षेप आवरण से रहित कर लिया है उनके ही अन्तःकरणमें आत्मा रूप से प्रकट होकर उनका उद्धार कर देते हैं। जैसे आतिशीं शीशा में ही सूर्यका प्रकाश अग्निरूप से प्रकट होकर जलाने लगता है अन्यत्र नहीं उसी प्रकार भगवान् भक्तों के शुद्ध अन्तःकरणों में प्रकट होकर उनका उद्धार कर देते हैं अन्य का नहीं। अतः जो अपना उद्धार चाहे वह अपना अन्तःकरण शुद्ध करे। भगवान् राम सूर्य के समान सम हैं उनको किसी से रागद्वेष नहीं। जो अपना अन्तःकरण शुद्ध करता जाता है उसके हृदयमें सहज ही भगवान् राम का प्राकट्य होकर उद्धार होता जाता है। यथा—

**जद्यपि सम नहिं राग न रोषू। गहहिं न पाप पुण्य गुनदोषू।**

**तदपि करहिं समविषम विहारा। भगत अभगत हृदय अनुसारा।**

भगवान् सच्चिदानन्द राम सर्वजीवोंकी आत्मा होनेसे सबको साक्षात् अपरोक्ष हैं परन्तु अज्ञान जनित विपरीत भावनाके कारण प्रत्यक्ष होनेपर भी अप्रत्यक्ष व परोक्ष हो गये हैं। अतः सच्चिदानन्द परमात्मा को प्रकट करने की जिसको इच्छा हो वह अपने अज्ञान और विपरीत ज्ञान को दूर करे जैसे जिसको सूर्य का दर्शन करना हो उसको आँखपर बँधी हुई पट्टी को खोलना होगा।

**दो० पुरुष प्रसिद्ध प्रकास निधि, प्रगट परावर नाथ।**
**रघुकुलमनि ममस्वामि सोइ, कहि शिव नायउ माथ॥**

हरि अवतार हेतु जेहि होई। इदमित्थं कहिं जाइ न सोई।
तदपि संत मुनि वेद पुराना। जस कछुकहहिं स्वमतिअनुमाना।
तस मैं सुमुखि सुनावउँ तोही। समुझि परइ जस कारन मोही।
जबजब होय धरम की हानी। बाढ़हिं असुरअधम अभिमानी।
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं विप्र धेनु सुर धरनी।
तबतब प्रभु धरि विविध शरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।

दो० असुर मारि थापहिं सुरन्ह, राखहिं निज श्रुति सेतु।
जग विस्तारहिं बिशद यश, राम जन्म कर हेतु॥

हरि व्यापक सवत्र समाना। प्रेम ते प्रगट होहिं मैं जाना।
देशकाल दिसि बिदिसिहु माहीं। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं
अगजगमय सब रहित बिरागी। प्रेम ते प्रभु प्रगटइ जिमि आगी।
जाके हृदय भगति जसि प्रीती। प्रभुतंह प्रगट सदा तेहि रीती।
बिनुपद चलइसुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ बिधिनाना।
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु वानी बकता बड़ जोगी।
तन बिनु परस नयन बिनु देखा. ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा।
असिमब भाँतिअलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी।
रामकाम सतकोटि सुभग तन। दुर्गा कोटि अमित अरि मर्दन।
सक्र कोटि सत सरिस बिलासा। नभ सतकोटि अमितअवकासा।

दो० मरुत कोटि सत विपुल बल, रवि सतकोटि प्रकाश।
ससि सतकोटि सुसीतल, समन सकल भव त्रास॥

काल कोटिसत सरिस अति, दुस्तर दुर्ग दुरन्त ।
धूमकेतु सतकोटि सम, दुराधरष भगवन्त ।
प्रभु अगाध सतकोटि पताला । समन कोटिसत सरिस कराला ।
तीरथ अमित कोटि सत पावन । नाम अखिल अघपूग नसावन ।
हिमगिरि कोटि अचल रघुबीरा । सिन्धु कोटिसत सम गम्भीरा ।
कामधेनु सतकोटि समाना । सकल कामदायक भगवाना ।
सारद कोटि अमित चतुराई । विधि सतकोटि सृष्टि निपुनाई ।
विष्नु कोटि सम पालन कर्ता । रुद्र कोटि सत सम संहरता ।
धनद कोटिसत सम धनवाना । माया कोटि प्रपंच निधाना ।
भारधरन सतकोटि अहीसा । निरवधि निरुपम प्रभु जगदीसा ।
छ० निरुपम न उपमा आन राम समान राम निगम कहै ।
जिमि कोटि सत खद्योत सम रवि कहत अति लघुता लहै ।
यहि भांति निज-निज मति विलास मुनीस हरिहि बखानहीं ।
प्रभु भाव गाहक अति कृपाल सप्रेम सुनि सुख मानहीं ॥
सो० भाववस्य भगवान, सुखनिधान करुना भवन ।
तजि ममता मद मान, भजिय सदा सीता रवन ॥

जैसे तरंगों की आत्मा जल होता है उसी प्रकार सर्वजीवोंकी आत्मा सच्चिदानन्द व्यापक राम हैं । अतः—

सो तैं ताहि तोहि नहि भेदा । वारि बीचि इव गावहिं वेदा ।

इसी कारण संसारके समस्त प्राणियोंको सच्चिदानन्द व्यापक राम प्रिय है । यथा—"ये प्रिय सबहि जहाँ लगि प्रानी ।"

मन मुसकाहि राम सुन बानी

**जीव जन्तु असको जगमाहीं। जेहि रघुनाथ प्रानप्रिय नाहीं।**

अर्थात सर्व की आत्मा होनेसे तथा आनन्द सिन्धु होनेसे सच्चिदानन्द रामके समस्त जीव उपासक हैं जो भगवान रामको निर्गुण व सगुण रूप जानकर उपासना करता है वह नदी समुद्रवत सच्चिदानन्द सर्वात्मा राम को प्राप्त होकर सदाके लिए संसृतचक्र से छूटकर परमानन्द राम-रूप से अचल स्थिर हो जाता है। यथा—

**सरिता जल जलनिधिमँह जाई। होय अचल जिमिजिवहरिपाई।**

जो आनन्द सुधासिन्धु सर्वात्मा रामको नहीं जानता वह आवागमनके चक्र मे भटकता रहता है। जैसे जो प्यासा मृग नदी की ओर पानी के लिए दौड़ता है, वह पानी को पाकर तृप्त हो जाता है और जो प्यासा मृग नदीको नहीं जानता और पानी की खोज में वालू के मैदान को पानी से भरी हुई नदी मानकर उसकी ओर दौड़ रहा है वह पानीको प्राप्त नहीं कर सकेगा और भटक-भटक कर मर जावेगा। जैसे वे दोनों प्रकारके प्यासे मृग पानीके उपासक हैं उसी प्रकार ज्ञानी अज्ञानी सभी जीव आनन्द सिंधु राम के उपासक है। परन्तु जबतक राम के स्वरूप का ज्ञान नहीं होगा तबतक मोह संशय भ्रम नाश नहीं हो सकता।

हे उमा वह तत्व सर्वात्मा सर्वाधिष्ठान सच्चिदानन्द राम ही हैं जिसका विज्ञान अर्थात् अनुभव प्राप्त करके शुद्ध अन्तःकरणवाले ध्यानस्थ मुनि निजानन्दमें मग्न रहते हैं। सच्चिदानन्द राम से भिन्न देह दृश्यको मृगजलवत असत जानकर देह दृश्य में सत बुद्धि और सुख बुद्धि तथा अहंता ममता के त्याग को ही वैराग्य कहते हैं। सच्चि-दानन्द राम के निर्गुण सगुण स्वरूपों को शास्त्र और गुरु के कथना-नुसार मानना अर्थात् प्रमाण गत संशय से रहित होना ज्ञान कहलाता है और प्रमेयगत संशयसे रहित होना अर्थात् अनेक प्रकारकी साधक

युक्तियोंको मनन करके शास्त्र के सिद्धान्तको बुद्धि में जमा लेना विज्ञान कहलाता है तथा ध्यान समाधि द्वारा विपरीत भावना को दूर करके परमात्मा रामका आत्मस्वरूप से साक्षात्कार करके अनन्य निष्ठा प्राप्त कर लेना पराभक्ति समझना चाहिए। परन्तु यह पराभक्ति भगवत् कृपा साध्य होने से अति दुर्लभ है।

दो॰ अविरल भक्ति विशुद्ध तव, श्रुति पुरान जो गाव।
जेहि खोजत जोगीश मुनि, प्रभु प्रसाद कोउ पाव॥

काग भुसुन्डीजी भी गरुड़ से भक्ति की दुर्लभता बता रहे हैं, यथा—

सबते सो दुर्लभ खगराया। राम भगति रत गत मदमाया॥

हे उमा! भगवान् राम के सगुण रूप से लोभी धनकवत् कामी स्त्रीवत प्रेम करना रूप अपराभक्ति ज्ञान वैराग्यादि समस्त गुणों की जननी है और निर्गुण स्वरूप में ज्ञान विज्ञान द्वारा सहज निष्ठा हो जाना और देह दृश्यमें अहंता ममता का अभाव हो जाना पराभक्ति है। इन सबका विस्तार से वर्णन अन्य प्रसंगों में कहा जावेगा।

ये ज्ञान भक्ति वैराग्य सब रहस्यमय है। इनके अतिरिक्त भगवान की रहस्यमय सामर्थ्य सती शरीरमें तुम स्वयं देख चुकी हो तथा माता कौशल्या को भी अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड नायक सच्चिदानन्द राम ने रोम-रोम में अनन्त ब्रह्माण्ड दिखलाए तथा फिर गायब कर लिये। धनुष यज्ञ में भगवान् रामने सबको अपनी-अपनी भावना के अनुसार रहस्यमय अनेकरूप दिखलाये। यथा—

जिन्हके रही भावना जैसी। प्रभु मूरति देखी तिन तैसी।
देखहिं रूप महारन धीरा। मनहु वीररस धरे शरीरा।
डरे कुटिल नृप प्रभुहिं निहारी। मनहु भयानक मूरति भारी।

पुरवासिन्ह देखे दोउ भाई। नर भूषन लोचन सुखदाई॥
विदुषन्ह प्रभु विराटमय दीसा। बहु मुख कर पगलोचन सीसा।
सहित सनेह विलोकहिं रानी। सिसु सम प्रीति न जाति बखानी।
जोगिन्ह परम तत्त्वमय भाषा। शांत शुद्ध सम सहज प्रकाशा।
हरि भगतन्ह देखे दोउ भ्राता। इष्टदेव इव सब सुखदाता।
रामहिं चितव भायँ जेहि सीया। सो सनेह सुख नहि कथनीया।
उर अनभवति न कहि सक सोऊ। कवन प्रकार कहै कवि कोऊ।
एहि विधि रहा जाहि जस भाऊ। तेहि तस देखेउ कोशल राऊ।

स्वयं निर्विकार असंग अखंड रहते हुए अपने में सत और असत्से विलक्षण दृश्य का भ्रम दिखलाना महान रहस्य है जो अज्ञान पर्यन्त भ्रममात्र होनेपर भी ईश्वर अन्श जीवको उसी प्रकार संसृत चक्र में फँसाए रहता है जैसे निद्रा पर्यन्त स्वप्नका दृश्य जीवको मोहित किया करता है। हे उमा! तुमने मुझसे मेरी निजी अनुभव नही पूछा सो भी सुनो—

उमा कहउँ मैं अनुभव अपना। सतहरि भजन जगतसब सपना।

भाव यह है कि भगवान् हरि ही देशकाल वस्तु के परिच्छेद से रहित होने से त्रिकालावाधित सत हैं और जगत सपना अर्थात् उनका अध्यस्त रूप है।

अतः अध्यस्त नाम रूपात्मक जगत का वाध करके सर्वाधिष्ठान भगवान् हरि सच्चिदानन्द राम का ही सदा चिन्तन करना ही भवभय नाशक भजन है यह मेरा अनुभव है। जैसे स्वप्न से जागना ही जाग्रत में पहुँचना है उसी प्रकार सर्वाधिष्ठान सच्चिदानन्द राम के निर्गुण स्वरूपका साक्षात्कार होते ही जीव अपने शुद्ध स्वरूप को भगवान्

राम के परमार्थ स्वरूप परमधाम में देखने लगता है। जब संसार सपना है तो जाग्रत का होना भी आवश्यक है। वही त्रिकालाबाधित परमार्थ सत्ता जाग्रत रामका वास्तविक स्वरूप है। जिसके भूल जानेसे जाग्रत निवासी जीव अपनेको स्वप्न संसारमें देखने लगता है, और जिसको जान लेनेपर स्वप्न संसार गायब हो जाता है। जैसे घटकाश महाकाश में सदा सर्वदा से स्थित है उसी प्रकार सच्चिदानन्द ब्रह्म रामका अन्श जीव महाकाशवत व्यापक रामके निर्गुण स्वरूप परम-धाम जाग्रत में सदा से स्थित है। परन्तु अज्ञान से देह रूपी घट में स्थित समझता है। अतः आने-जाने का प्रश्न अज्ञान पर्यन्त है। अवध पति अनादि परम प्रकाशक व्यापक राम अवध में कहीं से आते नहीं तो जायेंगे कहां। सुखधाम राम ही अखिल लोक को विश्राम देनेवाले परमधाम हैं जो सब जीवों को तरंग जलवत नित्य प्राप्त हैं। अतः रतन होते ही नित्य प्राप्त परमधाम की प्राप्ति हो जाती है जो अज्ञान निद्रा से अप्राप्त-सा हो गया था।

अतः भगवान् रामके निर्गुण स्वरूप का साक्षात्कार होते ही अवध के निवासी अपने को परमधामरूप जाग्रत में अनुभव करने लगे।

दो० उमा अवध वासीनर, नारि कृतारथ रूप।
ब्रह्म सच्चिदानन्द घन, रघुनायक जहँ भूप॥

हे उमा! सच्चिदानन्द निर्गुण ब्रह्म राम ने ही सगुण साकाररूप से अवधमें मनु सतरूपा के अवतार राजा दशरथ व कौशल्या के घर में लिया। उसका प्रधान कारण तो इस कल्प में मनु सतरूपा की अनन्य भक्ति ही थी। यथा—

दो० द्वादश अच्छर मंत्रवर, जपहिं सहित अनुराग।
वासुदेव पद पंकरूह, दंपति मन अति लाग॥

करहिं अहार साक फल कंदा। सुमिरहिं ब्रह्म सच्चिदानन्दा।
पुनि हरि हेतु करन तप लागे। वारि अधार मूल फल त्यागे।
उर अभिलाष निरंतर होई। देखिय नयन परम प्रभु सोई।
अगुन अखंड अनन्त अनादी। जेहि चिन्तहिं परमारथ बादी।
नेति नेति जेहि वेद निरूपा। निजानन्द निरुपाधि अनूपा।
शंभु विरंचि विष्णु भगवाना। उपजहि जासु अंशते नाना।
ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई। भगत हेतु, लीला तनु गहई।
जौं यह वचन सत्य श्रुति भाषा। तौ हमार पूजिहि अभिलाषा।
विधि हरिहर तप देख अपारा। मनु समीप आये बहु बारा।
मागहु वर बहु भाँति लुभाए। परम धीर नहिं चलहि चलाये।
अस्थिमात्र होइ रहे शरीरा। तदपिमनाग मनहिंनहिं पीरा।
प्रभु सर्वज्ञ दास निज जानी। गति अनन्य तापस नृपरानी॥
मागु मागु वह भै नभ बानी। परम गभीर कृपामृत सानी।

दो० श्रवन सुधासम बचन सुनि, पुलक प्रफुल्लित गात।
बोले मनु करि दण्डवत, प्रेम न हृदय समात॥

जो अनाथ हित हमपर नेहू। तौ प्रसन्न होइ यह वर देहू।
जो स्वरूप बस शिव मनमाहीं। जेहि कारन मुनि जतन कराहीं।
जो भुसुंडि मन मानस हंसा। सगुनअगुनजेहि निगमप्रसंसा।
देखहिं हम सो रूप भरि लोचन। कृपा करहु प्रनता रति मोचन।
भगत बछल प्रभु कृपानिधाना। विस्व बास प्रगटे भगवाना।

दो० नील सरोरुह नील मणि, नील नीर धरस्याम ।
लाजहि तनु शोभा निरखि कोटि-कोटि सतकाम ॥

वाम भाग सोभति अनकूला । आदिशक्ति छबिनिधिजगमूला ।
जासु अंश उपजहिं गुनखानी । अगनित लच्छि उमाब्रह्मानी ॥
भृकुटि विलास जासु जग होई । राम बाम दिशि सीता सोई ।
सकुचि विहाइ मागु नृप मोही । मोरे नहिं अदेय कछु तोही ।

दो० दानि सिरोमनि कृपानिधि, नाथ कहउँ सतिभाव ।
चाहउँ तुम्हहि समान सुत, प्रभु मन कवन दुराउ ॥

देखि प्रीति सुनि वचन अमोले । एवमस्तु करुना निधि बोले ।
आपु सरिस खोजौं कहँ जाई । नृप तव तनय होब मैं आई ।
सतरूपहिं विलोकि कर जोरे । देवि मागु वरु जो रुचि तोरे ।
जो वर नाथ चतुर नृप मागा । सोइकृपालमोहिअतिप्रियलागा ।

दो० सोइसुख सोइगति सोइ भगति, सोइनिजचरन सनेहु ।
सोइ विवेक सोइ रहनि प्रभु, हमहिं कृपा करि देहु ॥

बंदि चरन मनु कहेउ बहोरी । अवर एक विनती प्रभु मोरी ।
सुत विषयक तव पद रति होऊ । मोहिंवड़मूढ़ कहै किन कोऊ ।
मनिबिनफनिजिमिजलबिनुमीना । ममजीवनतिमितुम्हहिंअधीना ।
अस वरु मागिचरन गहि रहेऊ । एवमस्तु करुना निधि कहेऊ ।
अब तुम मम अनुसासन मानी । बसहु जाइ सुरपति रजधानी ।

सो० तहं करि भोग विलास, तातगए कछु काल पुनि।
होइहहु अवध भूआल, तब मैं होव तुम्हार सुत॥

इच्छामय नर वेष संवारे। होइहउं प्रगट निकेत तुम्हारे।
अंसन्ह सहित देह धरि ताता। करिहउ चरितभगतसुखदाता।
आदिशक्ति जेहि जग उपजाया। सो अवतरिहि मोरि यह माया।
पुरउब मैं अभिलाष तुम्हारा। सत्य सत्य पन सत्य हमारा।
पुनि पुनि असकहिकृपानिधाना। अंतरधान भए भगवाना।

एक कल्प में कश्यप और अदिति के तप करने पर भी सच्चिदानन्द ब्रह्म रामने ठीक यही वर उनको दिया था कि इस शरीर को छोड़कर अयोध्यामें जब तुम दशरथ और कौशल्या के रूप में जन्म लोगे तब मय शक्तिके अन्शों के सहित अवतार लूँगा। जलन्धर की स्त्री का और नारद का श्राप निमित्त मात्र था तथा दशरथ ने जो पुत्रेष्ट यज्ञ की थी वह भी भगवान के जन्म लेने में निमित्त मात्र थी। इसी प्रकार जीवोंके जन्म मरण और सुख दुःख में प्रधान कारण प्रारब्ध होता है अन्य कारण निमित्त मात्र होते हैं।

हे उमा! सच्चिदानन्द भगवान के इस रामावतार का दूसरा कारण यह भी था कि परम भक्त धर्मात्मा राजा प्रतापभानु विप्रों के शाप वश मय परिवार के घोर राक्षस वंश में उत्पन्न होकर रावण हुआ था जिसका उद्धार करने के लिए भगवान को मनुष्य शरीर धारण करना पड़ा क्योंकि उसने वर प्राप्त कर लिया था कि मनुष्य को छोड़कर उसको और कोई भी न मार सके।

रावण मरन मनुज कर जांचा, प्रभु विधि वचन कीन्ह चह साँचा।

पिंड में भी मोह रूपी रावण का मनुष्य देह धारण करके ही नाश

किया जा सकता है। अन्य कल्पों में हरि के द्वारपाल जय और विजय व जलंधर तथा हर के दो गणों को तामस असुर देह धारण करने पर मारने के लिए रामावतार हुआ क्योंकि इनके अत्याचारों से पृथ्वी व्याकुल हो गई थी यथा :—

करहिं उपद्रव असुर निकाया। नाना रूप धरहिं करि माया।
जेहि-जेहि देश धेनु द्विज पावहिं। नगर गाउँपुर आग लगावहिं।
अतिसय देखि धर्म कै ग्लानी। परम सभीत धरा अकुलानी।
सकल धर्म देखइ विपरीता। कहि न सकइ रावन भयभीता।
ब्रह्म सृष्टि जहँ लगि तनुधारी। दशमुख बशवर्ती नर नारी।
धेनुरूप धरि हृदय विचारी। गई तहाँ जहँ सुर मुनि झारी।
निज सन्ताप सुनाएसि रोई। काहु ते कछु काज न होई।
बैठे सुर सब करहिं विचारा। कहँ पाइअ प्रभु करिअ पुकारा।
पुर वैकुंठ जान कह कोई। कोउकह पयनिधि वस प्रभु सोई।
जाकेहृदय भगति जसिप्रीती। प्रभु तहँ प्रगट सदा तेहि रीती।
तेहि समाज गिरजामैं रहेऊँ। अवसर पाइ वचन एक कहेऊँ।
हरि व्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम ते प्रगट होहिं मैं जाना।
देशकाल दिसि विदिसिहु माहीं। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं।
अगजग मय सब रहित विरागी। प्रेमते प्रभु प्रगटइ जिमि आगी।
मोर वचन सबके मनमाना। साधु साधु करि ब्रह्म बखाना।

हे उमा! फिर सर्व रूप सर्वत्र व्यापक भगवान से पृथ्वी का भार उतारने के लिये प्रार्थना करने लगे तब आकाश वाणी हुई :—

जनि डरपहु मुनि सिद्धिसुरेसा । तुम्हहि लागि धरिहऊँ नरवेषा ॥
अंसन्ह सहित मनुज अवतारा । लेहऊँ दिनकर बंस उदारा ।
हरिहउँ सकल भूमि गरुआई । निर्भय होहु देव समुदाई ।
यह सब रुचिर चरित मैं भाषा अबसोसुनहु जो बीचहिं राखा ।
नौमी तिथि मधु मास पुनीता । सुक्लपच्छ अभिजित हरिप्रीता ।
मध्यदिवस अति-सीत न घामा । पावन काल लोक विश्रामा ।

छ० भय प्रगट कृपाला दीन दयाला कोसल्या हितकारी ।
हरषित महतारी मुनिमन हारी अद्भुत रूप विचारी ॥
लोचन अभिरामा तनुघन स्यामा निज आयुध भुजचारी ।
भूषन वनमाला नयन विसाला शोभा सिन्धु खरारी ॥
कह दुई कर जोरी अस्तुति तोरी केहिविधि करौं अनंता ।
माया गुन ग्याना तीत अमाना वेद पुराना भनंता ॥
करुना सुखसागर सबगुन आगर जेहिं गावहिं श्रुति संता ।
सो मम हित लागी जन अनुरागी भयउ प्रगट श्रीकंता ॥
ब्रह्मांड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति वेद कहै ।
मम उरसो वासी यह उपहासी सुनत धीरमति थिरन रहै ॥
उपजा जब ग्याना प्रभु मुसुकाना चरित बहुतविधि कीन्ह चहै ।
कहि कथा सुहाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुतप्रेम लहै ॥
माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा ।
कीजै शिशु लीला अतिप्रिय शीला यह सुख परमअनूपा ।

सुनि वचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुर भूपा ॥
यह चरित जो गावहिं हरिपद पावहिं तेन परहिं भवकूपा ॥

दो० विप्र धेनु सुर सन्त हित, लीन्ह मनुज अवतार ।
निज इच्छा निर्मित तनु, माया गुन गोपार ॥

हे उमा ! सच्चिदानन्द भगवान राम के चार पाद हैं जो ब्रह्म, ईश्वर, सूत्रात्मा और वैश्वानर समष्टि उपाधि की दृष्टि से कहलाते हैं व्यष्टि उपाधि की दृष्टि से कूटस्थ, प्राज्ञ, तैजसऔर विश्व कहलाते हैं। इन्हीं चार पादों को अर्धमात्रा मकार, उकार और अकार भी कहते हैं। धनुषधारी भगवान राम को साक्षात सर्वात्मा, सर्वाधिष्ठान, माया अविद्या से रहित सर्व व्यापक कूटस्थ अर्ध मात्रा ब्रह्म जानो तथा भरत को प्राज्ञ मकार ईश्वर का अवतार समझो। व्यष्टि समष्टि सूक्ष्म संघात के प्रकाशक तैजस उकार सूत्रात्मा का अवतार शत्रुहन हैं और व्यष्टि समष्टि स्थूल प्रपंच के प्रकाशक विश्व अकार वैश्वानर भगवान ही लक्ष्मण रूप में अवतरित हुए हैं। जैसे एक ही आकाश के उपाधि से महाकाश, मेघाकाश, घटाकाश तथा घटजलाकाश चार रूप हो जाते हैं उसी प्रकार एक ही निर्गुण सच्चिदानन्द व्यापक ब्रह्म राम १–कूटस्थ, अर्धमात्रा, ब्रह्म, २–मकार, प्राज्ञ, ३–उकार, तैजस, सूत्रात्मा, या हिरण्यगर्भ और ४—अकार, विश्व, वैश्वानर, या विराट चार रूप कारण सूक्ष्म स्थूल उपाधि द्वारा धारण करता है परन्तु परमार्थतः आकाशवत एक ही रहता है। कूटस्थ और प्राज्ञ दोनों में जाग्रत स्वप्न का अभाव है इसी कारण कूटस्थ राम और प्राज्ञ भरतका स्वरूप मिलता जुलता है और तैजस और विश्व दोनों के सामने क्रमशः स्वप्न और जाग्रतका दृश्य है इस कारण तैजस शत्रुहन और विश्व लक्ष्मण का स्वरूप मिलता जुलता है। चूंकि तैजससे प्राज्ञ और विश्व

से कूटस्थ की प्राप्ति सम्भव है इस कारण राम और लक्ष्मण साथ-साथ रहते हैं और भरत और शत्रुघन साथ साथ रहते हैं। ये सब विचार करके ही वशिष्ट जी ने अवतार होने पर चारो भाइयों का नाम करण किया।

जो आनन्द सिन्धु सुखरासी। सोकर ते त्रैलोक्य सुपासी।
सो सुखधाम राम अस नामा। अखिल लोक दायक विश्रामा।
विश्व भरन पोषन कर जोई। ताकर नाम भरत अस होई।
जाके सुमिरन ते रिपु नासा। नाम सत्रुहन वेद प्रकासा।

दो० लच्छन धाम राम प्रिय, सकल जगत आधार।
गुरु वसिष्ठ तेहि राखा, लछिमन नाम उदार॥

धरे नाम गुरु हृदय विचारी। वेद तत्व नृप तव सुत चारी।
चारिउ सील रूप गुन धामा। तदपि अधिक सुखसागर रामा।
भरत राम ही की अनुहारी। सहसा लखि न सकहि नरनारी।
लषन सत्रुसूदन एकरूपा। नखसिख ते सब अंग अनूपा।

दो० शुद्ध सच्चिदानन्दमय, कंद भानुकुल केत।
चरित करत नर अनुहरत, संसृत सागर सेत॥
सुख सन्दोह मोहपर, ज्ञान गिरा गोतीत।
दंपति परम प्रेम वस, कर सिसु चरित पुनीत॥

हे उमा!

एक वार जननी अन्हवाए। करि सिङ्गार पलना पौढ़ाए।

निज कुल इष्टदेव भगवाना। पूजा हेतु कीन्ह अस्नाना।
करि पूजा नैवेद्य चढ़ावा। आप गई जहँ पाक बनावा।
बहुरि मातु तहवाँ चलि आई। भोजन करत देख सुत जाई।
गै जननी सिसुपहिं भयभीता। देखा बाल तहाँ पुनि सूता।
बहुरि आइ देखा सुत सोई। हृदय कंप मन धीर न होई।
इहां उहाँ दुइ बालक देखा। मति भ्रमसोर कि आनविशेषा।
देखि राम जननी अकुलानी। प्रभु हँसि दीन्ह मधुर मुसुकानी।

दो० दिखरावा मातहि निज, अद्भुत रूप अखंड।
रोम रोम प्रति लागे, कोटि कोटि ब्रह्मण्ड॥

अगनितरविससिसिवचतुरानन। बहुगिरिसरित सिंधुमहि कानन।
काल कर्म गुन ज्ञान सुभाऊ। सोउ देखा जो सुना न काऊ।
देखी माया सब विधि गाढ़ी। अति सभीत जोरे कर ठाढ़ी।
देखा जीव नचावहिं जाही। देखी भगति जो छारै ताही।
तनु पुलकित मुख बचननआवा। नयनमूँदि चरननि सिरनावा।
विसमयवंत देखि महतारी। भए बहुरि सिसु रूप खरारी।
अस्तुति करि न जाइ भयमाना। जगत पिता मैं सुतकरि जाना।
हरि जननी बहुविधि समुझाई। यहजनि कतहुं कहसि सुनुमाई।
मन क्रम वचन अगोचर जोई। दशरथ अजिर विचर प्रभु सोई।
भोजन करत बोल जब राजा। नहिं आवत तजि बाल समाजा।

कौसल्या जब बोलन जाई। ठुमुक ठुमुक प्रभु चली पराई।
निगम नेति शिव अन्त न पावा। ताहि धरै जननी हठि धावा।
धूसर धूरि भरे तनु आए। भूपति विहंसि गोद बैठाये॥
दो० भोजन करत चपलचित, इत उत अवसर पाइ।
भाजि चले किलकत मुख, दधि ओदन लपटाइ॥

गुरु गृह गए पढ़न रघुराई। अल्प काल विद्या सब पाई।
जाकी सहज स्वासश्रुति चारी। सो हरि पढ़ यह कौतुक भारी।
वेद पुरान सुनहिं मन लाई। आपु कहहिं अनुजन्ह समुझाई।
प्रात काल उठि कै रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहिं माथा।
आयुस मागि करहिं पुर काजा। देखि चरित हरषइ मन राजा।

दो० व्यापक अकल अनीह अज, निर्गुन नाम न रूप।
भगत हेतु नाना विधि, करत चरित्र अनूप॥

हे उमा! अनन्य भक्त कागभुसुन्डि ने भगवान के बाल चरित्र को अपने मुख से स्वयं वर्णन किया उसको सुनो—

जब जब राम मनुज तनु धरहीं। भक्त हेतु लीला बहु करहीं।
तब तब अवध पुरी मैं जाऊँ। बाल चरित विलोकि हरषाऊँ॥
जन्म महोत्सव देखउँ जाई। बरष पाँच तहँ रहउँ लुभाई।
इष्ट देव मम बालक रामा। सोभा वपुष कोटि सत कामा।

दो० लरिकाईं जहँ जहँ फिरहिं, तहं तहं संग उड़ाउँ ।
जूठनि परइ अजिर महं, सो उठाइ करि खाउँ ।
एक वार अतिसय सब, चरित किए रघुवीर ।
सुमिरत प्रभु लीला सोइ, पुलकित भयउ सरीर ॥

रूप रासि नृप अजिर विहारी नाचहिं निज प्रतिविम्ब निहारी ।
मोहि सन करहिं विविधि विधि क्रीड़ा । वरनतमोहि होति अति व्रीड़ा ।
किलकत मोहि धरन जब धावहिं । चलउँ भागि तब पूप देखावहिं ।

दो० आवत निकट हंसहिं प्रभु, भाजत रुदन कराहिं ।
जाउँ समीप गहन पद, फिरि फिरि चितइ पराहिं ॥
प्राकृत सिसु इव लीला, देखि भयउ मोहि मोह ।
कवन चरित्र करत प्रभु, चिदानन्द सन्दोह ।

एतना मन आनत खगराया । रघुपति प्रेरित व्यापी माया ।
जानु पानि धाए मोहि धरना । स्यामलगात अरुन कर चरना ।
तब मैं भागि चलेउ उरगारी । राम गहन कहँ भुजा पसारी ।
जिमिजिमि दूरउड़ाउँ अकाशा । तँह भुजहरि देखउं निजपासा ।

दो० ब्रह्मलोक लगि गयउ मैं, चितयउँ पाछ उड़ात ।
जुग अंगुलकर बीच सब, राम भुजहिं मोहिं तात ॥
सप्त वरन भेद करि, जहाँ लगें गति मोरि ।
गयउ तहाँ प्रभु भुज निरखि, व्याकुल भयउँ बहोरि ॥

मूँदेउ नयन त्रसित जब भयऊ। पुनि चितवत कोशलपुर गयऊ।
मोहि विलोकि राम मुसुकाहीं। बिहँसत तुरत गयउ मुखमाहीं।
उदर माझ सुनु अंडज राया। देखेउँ बहु ब्रह्मांड निकाया।
अति विचित्र तहँ लोक अनेका। रचना अधिक एक ते एका।
कोटिन्ह चतुरानन गौरीसा। अगनित उडगन रविरजनीसा।
अगनित लोकपाल जमकाला। अगनित भूधर भूमि बिशाला।
सागर सरिसर बिपिन अपारा। नाना भाँति सृष्टि विस्तारा।
सुर मुनि सिद्ध नाग नर किंनर। चारि प्रकार जीव सचराचर।

दो० जो नहिं देखा नहिं सुना, जो मनहूँ न समाइ।
सो सब अद्भुत देखेउँ बरनि कवनि विधि जाइ॥
एक एक ब्रह्माण्ड महुं, रहउँ बरष सत एक।
एहि विधि देखत फिरउँ मैं, अंड कटाह अनेक॥

लोक लोक प्रति भिन्न विधाता। भिन्न विष्नु सिव मनु दिसित्राता।
नर गंधर्व भूत वेताला। किंनर निसिचर पसु खग व्याला।
देव दनुज गन नाना जाती। सकल जीव तहँ आनहिं भाँती।
महि सरि सागर सर गिरि नाना। सब प्रपंच तहं आनइ आना।
अंडकोस प्रति प्रति निज रूपा। देखउँ जिनस अनेक अनूपा।
अवधपुरी प्रति भुवन निनारी। सरजू भिन्न-भिन्न नर नारी।
दसरथ कौसल्या सुनु ताता। विविधि रूप भरतादिक भ्राता।
प्रति ब्रह्माण्ड राम अवतारा। देखउँ बाल विनोद अपारा।

दो० भिन्न भिन्न मैं दीख सब, अति विचित्र हरिजान।
अगनित भुवन फिरेउँ प्रभु, राम न देखेउँ आन।
सोइ सिसुपन सोइ सोभा, सोइ कृपाल रघुबीर।
भुवन भुवन देखत फिरउं, प्रेरित मोह समीर ॥

भ्रमत मोहिं ब्रह्माण्ड अनेका। बीते मनहु कल्प सत एका।
फिरत फिरत निज आश्रम आयउं। निर्भरप्रेम हरषिउठि धायउं।
देखउं जन्म महोत्सव जाई। जेहि विधि प्रथम कहा मैं गाई।
राम उदर देखेउं जग नाना। देखत बनइ न जाइ बखाना।
तहं पुनि देखेउं राम सुजाना। माया पति कृपाल भगवाना।
करउं विचार बहोरि बहोरी। मोह कलिल व्यापित मति मोरी।
उभय घरी महं मैं सब देखा। भयउं भ्रमित मन मोह विसेषा।

दो० देखि कृपाल विकल मोहिं, विहंसे तब रघुबीर।
विहसत हीं मुख बाहेर, आयउं सुनु मति धीर।
सोइ लरिकाई मो सन, करन लगे पुनि राम।
कोटि भाँति समुझावउं, मन न लहइ विश्राम।

देखि चरित यह सो प्रभुताई। समुझत देह दसा विसराई।
धरनि परेउं मुख आव न बाता। त्राहि त्राहि आरत जन त्राता।
प्रेमाकुल प्रभु मोहिं विलोकी। निज माया प्रभुता तब रोकी।
कर सरोज प्रभु मम सिर धरेऊ। दीन दयाल सकल दुःख हरेऊ।
कीन्ह राम मोहि विगत विमोहा। सेवक सुखद कृपा सन्दोहा।

हे उमा ! कागभुसुन्डि का मोह निर्मूल करके भगवान रामने उससे कहा :—

दो० माया संभव भ्रम सब, अब न व्यापहिं तोहि।
जानेस ब्रह्म अनादि अज, अगुन गुनाकर मोहि॥
पुरुष नपुंसक नारिवा, जीव चराचर कोइ।
सर्व भाव भज कपट तजि मोहिं परम प्रिय सोई॥

हे उमा !

काम क्रोध मद लोभ रत, गृहासक्त दुख रूप।
ते किमि जानहि रघुपतिहि, मूढ़ परे तम कूप॥
निर्गुन रूप सुलभ अति, सगुन जान नहि कोइ।
सुगम अगम नाना चरित सुनि मुनि मन भ्रम होइ।

दो० भगत हेतु भगवान प्रभु, राम धरेउ तनु भूप।
किए चरित पावन परम, प्राकृत नर अनुरूप॥
जथा अनेकन वेषधरि, नृत्य करइ नट कोइ।
सोइ सोइ भाव देखावइ, आपुन होय न सोइ।

हे उमा ! कागभुसुन्डि को भगवान रामने अपने उदर में जो लीला दिखलाई उसका तात्पर्य यही है कि अखिल स्थूल, सूक्ष्म कारण प्रपंच सच्चिदानन्द राम का ही माया मात्र स्वप्न वत स्वरूप है। सर्वाधिष्ठान सर्वात्मा सच्चिदानन्द राम ही जीव, ईश्वर, माया, जगत के रूप में प्रतीत हो रहे हैं। वे अनेक होते हुए भी एक रहते हैं। उनको जन्म लेते हुए भी अजन्मा और करते हुए भी अकर्ता परमार्थ

दृष्टि से समझो तथा सच्चिदानन्द परमात्मा राम से भिन्न अपनी या मेरी या किसी की भी सत्ता कदापि स्वीकार न करो। यदि मन में ऐसा प्रश्न उठता हो कि जब सच्चिदानन्द ब्रह्म राम ही जीव व ईश्वर रूप धारण करते हैं तो जीव और ईश्वर में भेद क्यों प्रतीत होता है। उसका उत्तर यह है कि जैसे पृथ्वी ही हीरामणि माणिक रूप में अवतार लेती है और कोयला व कंकड़ रूपमें भी अवतार लेती है परन्तु कोयला कंकड़ कदापि हीरामणि माणिक की बराबरी नहीं कर सकते यद्यपि कोयला व हीरा तथा कंकड़ और मणि माणिक तत्वतः पृथ्वी रूप ही हैं, उसी प्रकार जीव ईश्वरकी बराबरी नहीं कर सकता। रामके निर्गुण ब्रह्मस्वरूप को पृथ्वीके समान समझो और ईश्वर को हीरा मणि माणिकवत तथा जीवोंको कोयला कंकड़वत समझो। अथवा भगवान रामके निर्गुण स्वरूप सर्वाधिष्ठान सर्वात्मा सच्चिदानन्द ब्रह्मको सामान्य व्यापक अग्नि के समान समझो और जीवों को दीपक वत तथा ईश्वरको सूर्य वत जानों। जैसे दीपक और सूर्य की ज्योति तत्त्वतः सामान्य अग्निरूप ही है उसी प्रकार जीव और ईश्वर दोनों तत्त्वतः ब्रह्मरूप हैं परन्तु माया में प्रकट हुआ ब्रह्म ईश्वर रूपसे सर्वज्ञ सर्वं शक्तिमान होता है जो सूर्य के सदृश्य सम्पूर्ण जगत को प्रकाश देने में और अपने अधीन रखनेमें समर्थ है। वही ब्रह्म अन्तः करण रूपी दीपक में प्रकट होकर जीव कहलाता है जो अल्पज्ञ और अल्पशक्ति वाला उपाधि दोषसे प्रतीत होता है। इसी कारण निर्गुण ब्रह्म के सगुण रूप ईश्वर जीव में अभेद दर्शन अज्ञानीके लिए असम्भव है।

धनुष यज्ञमें भगवान रामके मुखचन्द्रको देखकर विदेह राजा जनक अपने सहज वैराग्य को भूलकर चकोर के समान मोहित हो गये क्योंकि भगवान राम ईश्वर के अवतार थे जिनके प्रकाश से सूर्य चन्द्रादि प्रकाशित होते हैं और जनक जीव कोटि के मनुष्य थे।

भगवान राम और लक्ष्मण को देखते ही राजा जनक विश्वामित्र से पूछने लगे :—

मूरति मधुर मनोहर देखी। भयउ विदेह विदेह विसेषी।
कहहुनाथ सुन्दर दोउ बालक। मुनिकुल तिलक कि नृपकुल पालक।
ब्रह्म जो निगम नति कहि गावा। उभय वेष धरिकी सोई आवा।
सहज विराग रूप मन मोरा। थकित होत जिमि चंदचकोरा।
ताते प्रभु पूछउं सति भाऊ। कहहु नाथ जनि करहु दुराऊ॥
इन्हहिं विलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्म सुखहिं मन त्यागा।

तात्पर्य यह है कि साक्षात्कार होने पर ध्यान जनित सुखमें भी राग नहीं रहता।

राजा जनक के इस प्रकार पूछनेपर विश्वामित्र ने उत्तर दिया—

ये प्रिय सबहि जहाँ लगि प्रानी।
मन मुसुकाहिं राम सुनि बानी॥

तात्पर्य यह है कि सभी जीवों को परमानन्द स्वरूप आत्मा में परम प्रीति है और वही राम हैं जैसे नाना प्रतिविम्बों की आत्मा एक विम्ब होता है अथवा नाना तरंगों की आत्मा जल होता है उसी प्रकार सब जीवों की आत्मा सच्चिदानन्द राम को समझना चाहिये।

यदि कहो सर्वात्मा सच्चिदानन्द तत्व तो व्यापक है और जनक जिन राम को देखते हैं वह परिच्छिन्न है इस शंका का समाधान यह है कि जैसे रज्जु का दण्ड सर्प रूपों में दीखना भावनाओं के अधीन है वास्तविक नहीं है उसी प्रकार—

जिन्हके रही भावना जैसी । प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी ।
देखहिं रूप महा रनधीरा । मनहुं वीर रस धरे सरीरा ।
डरे कुटिल नृप प्रभुहि निहारी । मनहु भयानक मूरति भारी ।
रहे असुर छल छोनिप वेषा । तिन्ह प्रभु प्रगट काल सम देखा ।
पुरवासिन्ह देखे दोउ भाई । नर भूषन लोचन सुखदाई ।

दो० नारि विलोकहिं हरषि हिय, निज निज रुचि अनुरूप ।
जनु सोहत सिंगार धरि, मूरति परम अनूप ॥

विदुषन प्रभु विराटमय दीसा । वहु मुखकर पग लोचनसीसा ।
जनक जाति अवलोकहिं कैसे । सजन सगे प्रिय लागहिं जैसे ।
सहित स्नेह विलोकहि रानी । सिसुसम प्रीति न जाति बखानी ।
जोगिन्ह परम तत्व मय भासा । सांत सुद्ध सम सहज प्रकासा ।
हरि भगतन्ह देखे दोउ भ्राता । इष्टदेव इव सब सुख दाता ।
रामहिं चितव भाय जेहि सीया । सो सनेह सुख नहिं कथनीया ।
उर अनुभवति न कहिसक सोऊ । कवन प्रकार कहै कवि कोऊ ।
एहि विधि रहा जाहिजस भाऊ । तेहितस देखेउ कोसल राऊ ।
राम अतर्क्य बुद्धि मन वानी । मत हमार अससुनहु सयानी ।

वाल्मीक ने भी भगवान राम के वास्तविक स्वरूप के सम्बन्ध में कहा है—

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर ।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह ॥

पूछेहु मोहि कि रहौं कहँ, मैं पूछत सकुचाउँ।
जहँ न होहु तहँ देहु कहि, तुम्हहिं देखावौं ठाउँ॥

जैसे नाटक में कोई पुरुष रानी बनकर अभिनय कर रहा है और दर्शक उसको रानी ही समझ रहे हैं, परन्तु वह अपने को अन्दर से पुरुष जान रहा है। अतः वास्तवमें वह रानीके वेष में होते हुये पुरुष ही है दर्शकों को दिखलाई पड़नेवाला रानीका वेष उसका स्वरूप नहीं है। उसी प्रकार राम मनुष्यके वेषमें परिच्छिन्न दिखाई पड़ते हैं वास्तव में वह व्यापक निर्गुण निराकार परमानन्द स्वरूप सर्व की आत्मा हैं क्योंकि उन्होंने स्वयं भी अपने सखाओं से उनको विदा करते समय कहा था :—

दो० अवगृह जाहु सखा सब, भजेहु मोहि दृढ़ नेम।
सदा सर्वगत सर्व हित, जानि करेहु अति प्रेम॥

हे उमा! जो स्वरूप अपनी भावना से देख रही हो वह रामका वास्तवस्वरूप नहीं है। राम का वास्तविक स्वरूप वह है जिस स्वरूप में उनकी वास्तविक निष्ठा है। उसी वास्तविक स्वरूप सर्वात्मा सर्वाधिष्ठान का सखाओं को उपदेश किया कि तुम जड़ देहोंमें आत्म बुद्धि का त्याग कर मेरे सच्चिदानन्द स्वरूप में आत्म बुद्धि करके मुझसे वैसा परम प्रेम करो जैसा प्रेम देहों में आत्मबुद्धि करके कर रहे हो क्योंकि घटाकाशरूपी जीव को घट रूपी देह से अहंता निकाल कर महाकाश रूपी मुझ सच्चिदानन्द राम में अहंता करना चाहिये।

जैसे रात्रि को सूर्य के बिना कोई नाश नहीं कर सकता उसी प्रकार हे उमा! मेरे धनुष को भगवान राम के बिना और कोई नहीं तोड़ सकता। पिंडमें अहंकार रूप मेरा धनुष भी तभी टूटता है जब मल विक्षेप आवरण से रहित शुद्धबुद्धि वृत्तिमें हंस रूप से सच्चिदानन्द

ब्रह्म रामका प्राकट्य होता है। फिर अहंकार रूपी धनुष के दो टुकड़े हो जाते हैं अर्थात घटाकाशवत कूटस्थमें वास्तविक अहंभाव हो जाता है जिसको अनादि काल से भूले हुए थे और साभास अन्तःकरण में कल्पित आभासमात्र स्वप्नवत वाधित अहंकार रह जाता है जिसको अनादि काल से अपना सत्य स्वरूप दृढ़तापूर्वक निश्चय कर रहे थे। सर्वात्मा सच्चिदानन्द राम का आत्मारूपसे साक्षात्कार होनेपर ब्रह्माकार वृत्ति और मनुष्याकार वृत्ति दोनों का बाध अर्थात मृगजलवत मिथ्या निश्चय हो जाता है। उसी प्रकार भगवान राम ने भी जनकपुर में लीला की। समस्त राजा मिल कर भी तारागणों की भाँति धनुष रूपी अन्धकार का नाश नहीं कर सके। परन्तु जैसे सूर्य सहज ही विना श्रम के रात्रि के अन्धकार को नाश करके कमल के पुष्पों को खिला देता है उसी प्रकार सच्चिदानन्द भगवान राम ने मेरे धनुष को अत्यन्त शीघ्रता से उठाकर दो टुकड़े करके पृथ्वी पर फेंक दिये जिससे शुद्ध हृदय रूपी कमल खिल गए। शीघ्रता करने का कारण यह था कि आदि शक्ति जगज्जननी सीता को एक-एक पल सौ-सौ कल्प के समान व्यतीत हो रहा था। इसी प्रकार हे उमा! पिंड में भी सच्चिदानन्द राम ज्ञान रूप से प्रकट होकर शीघ्र ही अहंकार रूपी मेरे धनुष को तोड़कर फेंक देते हैं जब जिज्ञासु सीता के समान मोक्षप्राप्ति के लिए व्याकुल हो उठता है। हे उमा सीता जी को अपने व्योग से अत्यन्त व्याकुल देख कर ही भगवान राम ने धनुष को तोड़ने में शीघ्रता की।

अति परिताप सिय मनमाहीं। लव निमेषजुग सय सम जाहीं।
गिरा अलिनिमुख पंकज रोकी। प्रगट न लाज निसाअवलोकी।
लोचन जल रह लोचन कोना। जैसे परम कृपनका सोना।
देखी विपुल विकल वैदेही। निमिष बिहात कलप समतेही।

तृषित वारि बिनुजो तनुत्यागा । मुए करइका सुधा तड़ागा ।
का बरखा सब कृषी सुखानें समय चुके पुनि का पछताने ।
अस जिय जानि जानकी देखी । प्रभु पुलके लखि प्रीति विसेषी ।
गुरुहिं प्रनाममनहिंमन कीन्हा । अतिलाघव उठाइ धनु लीन्हा ।
दमकेउदामिनिजिमि जवलयऊ । पुनि नभ धनुमंडलसम भयऊ ।
लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े । काहु न लखा देख सब ठाढ़े ।
तेहि छन राम मध्य धनु तोरा । भरे भुवन धुनि घोर कठोरा ।
प्रभु दोउ चाप खंड महि डारे । देखि लोग सब भये सुखारे ।
सखिन्ह सहित हरषी अति रानी । सूखत धान परा जनु पानी ।
जनक लहेउ सुख सोच विहाई । पैरत थके थाह जनु पाई ।
श्रीहत भए भूप धनु टूटे । जैसे दिवस दीप छवि छूटे ।
सीय सुखहिं बरनिअ केहि भाँती । जनु चातकी पाइ जल स्वाती ।
सखिन्ह मध्य सिय सोहति कैसे । छवि गन मध्य महाछवि जैसे ।
कर सरोज जै माल सुहाई । विश्व विजयशोभा जेहि छाई ।
गावहिं छवि अवलोकि सहेली । सिय जयमाल राम उर मेली ।

पिंडमें अहंकाररूपी धनुष भंग होनेपर त्वं पदके लक्ष्य घटाकाशवत कूटस्थमें अभिमान करना ही जैमाल है और तत्पदके लक्ष्य महाकाशवत ब्रह्म रामसे निज स्वरूप कूटस्थका अभेद निश्चय करना जयमाल पहनाना है ।

दो० रघुवर उर जयमाल, देखिदेव वरसहिं सुमन ।
सकुचे सकल भुआल, जनु विलोकि रवि कुमदगन ।

धनुष टूटनेपर भगवान् रामके सामने सभी राजा लोग उसी प्रकार उदास हो गये जैसे सूर्यके सामने दीपक फीके पड़ जाते हैं और कुमुदके पुष्प सकुच जाते हैं। इसी प्रकार पिंडमें भी अहंकार रूपी धनुषका भंग जब ज्ञानरूपी रामके द्वारा हो जाता है तो अन्तःकरणमें ज्ञानके सामने जप तपादि समस्त साधनों व कामक्रोधादि वृत्तियोंका बाध हो जाता है और कर्तव्यका अभाव हो जानेसे उनमें रस नहीं रहता तथा समस्त विषयानन्द मृगजल और प्रतिबिम्बवत आभास मात्र होनेसे फीके पड़ जाते हैं। कर्तृत्व भोक्तृत्वका अहंकार नाश होते ही जीवका ईश्वरके लक्ष्यार्थमें घटाकाश महाकाशवत मुख्य समानाधिकरण हो जाता है और व्यष्टि समष्टि स्थूल सूक्ष्म कारण उपाधियोंका मय चिदाभासके ठूँठपुरुष और मृगजलवत सर्वाधिष्ठान सच्चिदानन्द रामसे बाध समानाधिकरण हो जाता है और जीव ईश्वर का मेल होते ही कोई कर्तव्य शेष नहीं रहता परन्तु फिर भी शरीर की प्रारब्ध पर्यन्त लोकसंग्रहके लिए आभासमात्र व्यवहार किया जाता है। यही बात धनुष टूटनेपर जनकसे विश्वामित्रने भी कही थी—

कह मुनि सुनु नर नाथ प्रवीना। रहा विवाह चाप अधीना।
टूटत ही धनु भयउ विवाहू। सुर नर नाग विदित सब काहू।

दो० तदपि जाइ तुम्ह करहु अब, जथा बंस ब्यवहार।
बूझि विप्र कुल वृद्ध गुरु वेद विदित आचार॥

जैसे धनुष भंग होनेपर परशुरामने आकर विघ्न डाला फिर शान्त हो गये उसी प्रकार पिंडमें भी अपरोक्ष ज्ञान होनेपर भी संशय और विपर्यय विघ्न डालते हैं। परन्तु श्रवण मनन निदिध्यासन द्वारा निवृत्त हो जाते हैं। हे उमा! सीताजीको सर्वात्मा सच्चिदानन्द ब्रह्म रामकी शक्तिका अवतार समझना चाहिए। यदि तुम यह कहो कि

यदि यह ब्रह्म शक्ति होती तो मेरी प्रार्थना मन्दिरमें क्यों करने आई कि

**मोर मनोरथ जानहु नीके। बसहु सदा उर पुर सब ही के।**

इस शंकाका समाधान यह है कि ब्रह्म शक्ति होते हुए उन्होंने संसार को उपदेश देनेके लिए इस प्रकारसे तुम्हारी वन्दनाकी कि मन्दिरोंमें उपासकको अपने उपास्यके प्रति जड़ परिच्छिन्न भावना नहीं होना चाहिये बल्कि यह भावना होना चाहिए कि यह जो हमारे सामने इष्टकी मूर्ति खड़ी है यह चेतन सर्वज्ञ और सर्वव्यापक है। जैसे मनुष्यकी फोटो मनुष्यसे प्रथक होती है उस प्रकारसे इष्टकी मूर्ति इष्टसे प्रथक नहीं है बल्कि इष्टकी मूर्ति इष्टसे उसी प्रकार परिपूर्ण है जैसे तरंगे जलसे और भूषण स्वर्णसे परिपूर्ण होते हैं। अतः जैसे सोनेकी मूर्तियाँ नाना जेवर हैं उसी प्रकार भगवान्‌की अनेक मूर्तियोंमें अपने ही इष्टको देखना चाहिए और अपने इष्टका तटस्थ लक्षण संसारकी उत्पत्ति-पालन-संहार करना और स्वरूप लक्षण व्यापक अविनाशी सच्चिदानन्द समझना चाहिये। इन्हीं दोनों लक्षणोंका वर्णन करते हुए सीताजीने तुमको अपना इष्टमानकर तुम्हारी वन्दना की थी।—यथा!

**नहि तव आदि मध्य अवसाना। अमित प्रभाव वेद नहिं जाना।**

यह स्वरूप लक्षणका वर्णन हुआ।

**भवभव विभव पराभव कारिनि। विश्व विमोहनिस्ववस विहारिनि।**

यह तटस्थ लक्षणका वर्णन हुआ। इसी प्रकार मैंने अपने इष्ट रामका स्वरूप लक्षण तुमको कह सुनाया है यथा—

**राम सच्चिदानन्द दिनेशा। नहिं तहँ मोह निशा लवलेशा।**

तथा तटस्थ लक्षण भी कहा है यथा—

उमारामकी भृकुटि विलासा। होइ विश्व पुनि पावइ नासा।

हे उमा ! अब रामका एक ऐसा लक्षण सुनो जो स्वरूप लक्षण भी है और तटस्थ लक्षण भी है। उस नित्य वन्दनीय लक्षणको सुनो—

प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा नमम्ले वनवासदुःखतः।
मुखाम्बुज श्रीरघुनन्दनस्य मे सदास्तु सामञ्जुलमङ्गलप्रदा॥
राउ सुनाई दीन्ह वनवासू। सुनिमन भयउन हरषु हरासू॥
विसमय हरष रहित रघुराउ। तुम्ह जानहु सब राम स्वभाऊ।
सुनि गुरु वचन चरन सिरनावा। हरष विषाद न कछु उर आवा।

दो० सभय विलोके लोग सब, जानि जानकी भीरु।
हृदय न हरष विषाद कछु, बोले श्री रघुवीर॥

कहां तो भगवान रामको राजतिलक होनेवाला था और कहां माता कैकेई ने राजा दशरथ से वर लेकर उनको १४ वर्ष का कठोर वनवास दे दिया। परन्तु भगवान राम वन जाने में भी उतने ही प्रसन्न थे जितना राजतिलक होनेमें। यद्यपि उनके वियोगमें माता कौशल्या और पिता दशरथ की बात ही क्या सारी प्रजा, पशु और पक्षी भी मारे शोक के मृतक समान हो गये। यथा—

राम बियोग विकल सब ठाढ़े। जहँतहँ मनहुं चित्र लिखि काढ़े।
राम वियोग विकल पशु ऐसे। प्रजा मातु पितु जीवहिं कैसे।
निंदहिं आपु सराहहिं मीना। धिकजीवन रघुवीर विहीना।
राम चलत अति भयउ विषादू। सुनिनं जाइ पुर आरत नादू॥

करि विलाप सब रोवहिं रानी। महा विपति किमि जाइ बखानी।
सुनि विलाप दुखहू दुखु लागा। धीरजहू कर धीरज भागा।

परन्तु—

अवध राज सुर राज सिहाहीं। दशरथ धन सुनि धनद लजाहीं।

ऐसे महान राज्य को तृणवत छोड़कर वन जाते समय :—

मन मुसकाइ भानुकुल भानू। राम सहज आनन्द निधानू।
मुख प्रसन्न मन राग न रोषू। सबकर सब विधि करि परितोषू।
दो० भूमि सयन बलकल बसन, असन कंद फल मूल।
ते कि सदा सब दिन मिलहिं, सबुइ समय अनुकूल॥

हे उमा! भगवान के प्रसन्नता पूर्वक इस महान त्याग से मनुष्य मात्र को सुख दुःख में समान रहने की शिक्षा लेना चाहिए क्योंकि—

जनम मरन सब दुखसुख भोगा। हानि लाभ प्रिय मिलन वियोगा।
काल करम बस होहिं गुसाईं। बरबस राति दिवस की नाईं।
सुख हरषहिं जड़ दुख विलखाहीं। दोउ सम धीर धरहिं मनमाहीं।
करइ जो कम पाव फल सोई। निगम नीति अस कह सब कोई।
शुभ अरु अशुभ कर्म फल चारी। ईश देत फल हृदय विचारी।

यदि कहो कि कर्म का वर्तमान में फल प्राप्त न होने से शुभ कर्म करने में जीवों की रुचि नहीं हो सकती। तो इसका समाधान यह है कि जैसे खेती बोने और बाग लगानेका फल वर्तमान में प्राप्त नहीं होता कालान्तर में प्राप्त होता है तब भी खेती बोने और बाग लगाने में मनुष्यों की रुचि देखी जाती है उसी प्रकार शुभ कर्म करने में भी रुचि

होना चाहिए। यदि कहो कि किसान तो खेती बोकर और बाग लगाकर प्रत्यक्ष फल काटता तोड़ता है परन्तु शुभ कर्मों का फल प्रत्यक्ष नहीं। इसका समाधान यह है कि कर्मोंका फल प्रत्यक्ष है क्योंकि राजाके यहाँ पैदा होनेवाला विना पुरुषार्थ सारी सामग्री प्राप्त कर लेता है और ऋणीके घर पैदा होनेवाला ऋण आजन्म चुकाया करता है। अतः शुभाशुभ कर्मों का फल भी प्रत्यक्ष है। यदि कहो जैसे एक की बोई हुई खेती दूसरा भी काट सकता है उसी प्रकार क्या एक के किये हुए कर्मों का फल दूसरा भी प्राप्त कर सकता है। इसका समाधान यह है कि एक के शुभाशुभकर्म दूसरे के लिए सुख दुख के हेतु नहीं हो सकते। यदि एक के किये हुए कर्मोंका फल दूसरों को प्राप्त होने लगे तो पापी के पाप से धर्मात्मा को नर्क और धर्मात्मा के पुण्य से पापी को स्वर्ग होना चाहिए और ज्ञानी के ज्ञान से अज्ञानी मुक्त तथा अज्ञानी के मोह से ज्ञानी को बद्ध होना चाहिये। परन्तु ऐसा होना युक्ति, शास्त्र और अनुभव से असंगत है। यही बात लक्ष्मण जी ने निषाद को समझाई जब उसने भगवान रामके वनवास होने में कैकेई को दोष दिया।

दो० कैकय नंदिनि मंदमति, कठिन कुटिलपनु कीन्ह।
जेहि रघुनन्दन जानकिहि, सुख अवसर दुखदीन॥

भइ दिनकर कुल विटप कुठारी। कुमति कीन्हसब विश्व दुखारी।
भयउ विषाद निषादहि भारी। राम सीय महि सयन निहारी।
बोले लषन मधुर मृदुवानी ग्यान। विराग भगति रस सानी।
काहुन कोउ सुखदुख कर दाता। निजकृत करम भोग सब भ्राता।
जोग वियोग भोग भल मन्दा। हित अनहित मध्यम भ्रम फंदा।
जनम मरण जहँ लगि जग जालू संपति विपति करम अरुकालू।

घरनि धाम धन पुर परिवारु। सरगु नरकु जहँ लगि व्यवहारु।
देखिअ सुनिअ गुनिअ मनमाहीं। मोह मूल परमारथ नाहीं।

दो० सपने होइ भिखारि नृपु, रंक नाक पति होइ।
जागे लाभ न हानि कछु तिमि प्रपंच जिय जोइ॥

अस विचार नहिं कीजिय रोषू। काहुहि वादि न देइअ दोषू।
मोह निसा सब सोवनि हारा। देखिअ सपन अनेक प्रकारा।
एहि जग जामिनि जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच वियोगी।
जानिअ तबहिं जीवजग जागा। जब सब विषय विलास विरागा।
होइ विवेक मोह भ्रम भागा तब रघुनाथ चरण अनुरागा॥
सखा परम परमारथ एहू। मनक्रम वचन राम पद नेहू।
राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अविगत-अलख अनादि-अनूपा।
सकल विकार रहित गतभेदा। कहि नित नेति निरूपहिं वेदा।
सखा समुझि अस परिहरिमोहू। सिय रघुवीर चरनरत होहू।

तात्पर्य यह है कि कैकेईके कर्मका फल वनवास नहीं वह अपने कर्मका फल स्वयं भोगेगी। भगवान् रामके राज्य त्याग और वनगमन में स्थूल दृष्टिवाले कैकेईको दोष देते हैं कि कैकेईने राजा दशरथसे छल करके भगवान रामके लिए १४ वर्षका वनवास माग लिया। परंतु—

उमा दारु जोषित की नाईं। सबहिं नचावत राम गुसाईं।
ईश रजाइ सीस सब ही के। उतपतिथितिलयविषहुअमी के।
हरि इच्छा भावी बलवाना। हृदय विचारत शम्भु सुजाना।

भावार्थ यह है कि जीव कर्म परतंत्र है। अभिमान पूर्वक किए हुए शुभाशुभ कर्मोंका ही फल सुख दुःख प्राप्त किया करता है परन्तु मूर्खता वश सुख दुःख देनेवाला अपने कर्मोंसे अन्य मित्र, शत्रु आदिको मानता है। इसी कारण जिसको सुख देनेवाला समझता है उससे राग और जिसको दुःख देनेवाला समझता है उससे द्वेष करता रहता है और रागद्वेष पर्यन्त संसार जालमें ही फँसा रहकर जन्ममरण को पुनः-पुनः प्राप्त होता रहता है। जब अपने शुभाशुभ कर्मोंको ही सुख दुःख देनेवाला जान लेता है तब संसारसे रागद्वेष करना बन्द कर देता है। रज्जुसर्प—रज्जुमें नहीं बल्कि रज्जुके अज्ञान कालमें मनकी भावना मात्र है उसी प्रकार सम्पूर्ण त्रिलोकी भगवान् रामके परमार्थ स्वरूप ब्रह्मके अज्ञान कालमें मनकी भावनामें है। अज्ञानका नाश होनेपर मनका नाश और मनके नाश होनेपर संसार भावनाका नाश हो जाता है। चूँकि यह संसार सोपाधिक भ्रम है इस कारण प्रारब्ध पर्यन्त इसकी दर्पणमें प्रतिबिम्बवत प्रतीति होती रहती है परन्तु मान्यता नष्ट हो जाती है।

जब संसार स्वप्न है तो यहाँका राजतिलक और वनवास भी स्वप्नका है। फिर राजतिलकसे राग और वनवाससे द्वेष करना भ्रांति है। जाग्रत दृष्टिसे भगवान् राम अलख निर्विकार निर्गुण निराकार व्यापक सर्वात्मा हैं राजा या वनवासी नहीं। ये सब स्वप्नवत मायामात्र लीला है। ज्ञान और सुखके समुद्र रामको कर्म परतंत्र नहीं समझना चाहिये। कर्म परतंत्र देहाभिमानी होते हैं। जैसे नाटक में लीला की जाती है उसी प्रकार भगवान् राम मनुष्य लीला कर रहे हैं। उनको मनुष्य मत समझो। जीव भी चेतन अमल सहज सुखराशी अविनाशी घटाकाशवत महाकाश रूपी परमात्माका अन्श है परन्तु अज्ञानसे देहरूपी कपड़ेको अपना स्वरूप जानता है। हे उमा! भगवान राम मनुष्य लीला ऐसी गम्भीरतापूर्वक करते हैं कि तुम

सरीखे शुद्ध अन्तःकरण वाले बुद्धिमान भी मोहित होकर भगवान रामको मनुष्य मान लेते हैं। परन्तु—

मागी नाव न केवट आना। कहइ तुम्हार मरम मैं जाना।

केवट जानता था कि सच्चिदानन्द सर्वात्मा सर्वाधिष्ठान ब्रह्म ही मनुष्य वेषधारण करके लीला कर रहे हैं। इसी कारण उनके चरण धोकर पीनेमें अपना सौभाग्य समझ कर चरण धोनेके लिए प्रेमके व्यंग वचन बोलने लगा।

चरन कमल रज कहुं सब कहई। मानुष करनि मूरि कछु अहई।
छुअत सिला भइ नारि सुहाई। पाहन ते न काठ कठिनाई।
तरनिउ मुनि घरिनी होइ जाई। बाट परइ मौरि नाव उड़ाई।
एहि प्रति पालहुं सब परिवारू। नहिं जानऊँ कछु अवरकवारू।
जौ प्रभु पार अवसिगा चहहू। मोहिपद पदुम पखारन कहहू।

छं० पदकमल धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहौं।
मोहि राम राउरि आन दशरथ सपथ सब साँची कहौं।
वरु तीर मारहु लषन पै जब लगि न पायँ पखारिहौं।
तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपाल पारु उतारिहौं॥

दो० सुनि केवट के बैन, प्रेम लपेटे अटपटे।
विहँसे करुना ऐन, चितइ जानकी लषन तन॥

कृपासिन्धु बोले मुसकाई। सोइ करुजेहि तवनाव न जाई।
वेगि आनु जल पाय पखारू। होत विलम्बु उतारहि पारू।
जासु नाम सुमिरत एक बारा। उतरहिं नर भवसागर पारा।
सोइ कृपालु केवटहिं निहोरा। जेहि जगुकियतिहुँ पगहुंते थोरा।

अर्थात् सर्वात्मा भगवान्के चारपाद विश्व तैजस प्राज्ञ तुरीय हैं। भगवान राम अपने विश्व रूप एक पादसे जाग्रत, तैजस रूप दूसरे पादसे स्वप्न नाम लेते हैं और प्राज्ञ रूप तीसरे पादसे नापने के लिए कुछ नहीं रहता तब अहंकार रूपी बलि राजाको प्राज्ञ रूप तीसरे पाद से नाप लेते हैं तथा भगवान रामका चतुर्थ पाद तुरीय निर्गुण निराकार निर्विकार निष्प्रपंच निर्द्वैत परमानन्दघन है उसीको भवसागर का जहाज समझना चाहिए, क्योंकि उस चतुर्थपादमें स्थित हुए बिना उसके अज्ञानसे भ्रममात्र उत्पन्न हुए संसारका अत्यन्ताभाव नहीं हो सकता। वही चतुर्थ पाद तुरीय रूप राम गंगाके पार जानेके लिए केवट से लीला करते हुए निहोरा कर रहे हैं।

पद नख निरखि देवसरि हरषी। सुनि प्रभुवचनमोह मति करषी।
केवट राम रजायस पावा। पानि कठवता भरि लेइ आवा।
अति आनन्द उमगि अनुरागा। चरन सरोज पखारन लागा।
बरषि सुमन सुरसकल सिहाहीं। एहि सम पुन्यपुञ्ज कोउ नाहीं।

दो॰ पद पखारि जलपान करि, आपु सहित परिवार।
पितर पार करि प्रभुहिं पुनि, मुदित गयउ लेइ पार॥

उतरि ठाढ भय सुरसरि रेता। सीय राम गुह लषन समेता।
केवट उतरि दंडवत कीन्हा। प्रभुहि सकुचएहिनहिंकछुदीन्हा।
पिय हियकी सिय जाननहारी। मनि मुदरी मन मुदित उतारी।
कहेउ कृपालु लेहु उतराई। केवट चरन गहे अकुलाई।
नाथ आज मैं काह न पावा। मिटे दोष दुःख दारिद दावा।
बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी। आजु दीन्ह विधि बनिभलिभूरी।

अब कछु नाथ न चाहिअ मोरे। दीनदयाल अनुग्रह तोरे॥
फिरती बार मोहि जो देवा। सो प्रसाद मैं सिर धरि लेवा।

दो० बहुत कीन्ह प्रभु लखन सिय, नहिं कछु केवट लेइ।
विदा कीन्ह करुनायतन, भगति विमलवर देइ॥

भगवान् रामके वन चले जानेपर और यत्न करनेसे भी लौटनेकी आशा न रहनेपर राजा दशरथने भगवान् रामके वियोगमें उसी प्रकार प्राण त्याग दिये जैसे जलके वियोगमें मछली अपने प्राण छोड़ देती है।

दो० राम राम कहि राम कहि, राम राम कहि राम।
तन परिहरि रघुवर विरह, राउ गयउ सुरधाम।

भगवान रामकी इच्छानुसार ही कैकेई ने रामके लिए १४ वर्षका वनवास माँगा, क्योंकि सच्चिदानन्द भगवान्के अवतारका प्रधान लक्ष्य राक्षसोंका संहार करना और सन्तोंको दर्शन देकर कृतार्थ करना था। तत्पश्चात् राम राज्यकी स्थापना करना था। अतः उन्होंने उस स य राज्य स्वीकार न करके वन जाना चाहा और वैसी ही परस्थिति उत्पन्न कर दी। व्यावहारिक दृष्टिसे भी उन्होंने भरत शत्रुहनकी अनुपस्थितिमें अयोध्याकी राजगद्दीपर बैठना दोषपूर्ण समझा था। इस लौकिक कारणसे भी उन्होंने राज्य त्यागके उपाय रच दिये और राज्य छोड़ दिया। राम, लक्ष्मण सीताके वन चले जानेपर और राजा दशरथका स्वर्गवास होनेपर भरत शत्रुहन अयोध्या माताके यहांसे वापिस आये और पिता दशरथकी मृत्युसे भी अधिक भगवान् रामके वनवासको असह अनुभव किया और सोचने लगे कि—

सो सुख करम धरम जरि जाऊ। जहँ न राम पद पंकज भाऊ।
जोग कुजोग ज्ञान अज्ञानू। जहँ नहि राम प्रेम परधानू।

सोक समाज राज केहि लेखे । लखन राम सिय बिनु पद देखे ।
बादि बसन बिनु भूषन भारू । बादि बिरति बिनु ब्रह्म विचारू ।
सरुज शरीर बादि सब भोगा । बिनु हरिभगति जाय जपजोगा ।
जाय जीव बिनु देह सुहाई । बादि मोरि सब बिनु रघुराई ।

फिर भरतजी तुरन्त भगवान रामके पास वन जानेके लिए मय गुरु व माताओं और पुरवासियोंके तैयार हो गये और यह दृढ़ निश्चय कर लिया कि राज्य भगवान रामका है मेरा नहीं। चित्रकूटमें भगवान रामके पास पहुंच कर भगवान रामसे प्रार्थना की कि —

दो॰ सानुज पठइअ मोहि वन कीजिअ सबहि सनाथ ।
नतरु केरि अहि बधु दोउ, नाथ चलौं मैं साथ ॥

नतरु जाहि वन तीनिउ भाई । बहुरिअ सीय सहित रघुराई ।
सेवक हित साहिब सिवकाई । करै सकल सुख लोभ विहाई ।
आज्ञा समन सुसाहिब सेवा । सो प्रसाद जन पावै देवा ।

भगवाक रामने भरतजी को बड़े प्रेमसे समझाया कि—

मोर तुम्हार परम पुरुषारथ । स्वारथ सुजस धर्म परमारथ ।
पितु आयसु मानहिं दोउ भाई । लोक वेद भल भूप भलाई ।
मातु पिता गुरु स्वामि निदेसू । सकल धरम धरनीधर सेसू ॥
सो तुम करहु करावहु मोहू । तात तरनि कुल पालक होहू ।
गुरु पितुमातु स्वामिसिख पाले । चलेउ कुमगपग परहि न खाले ।
अस विचारि सब सोच विहाई । पालहु अवध अवधि भरि जाई ।

देश कोष परिजन परिवारू। गुरुपद रजहिं लाग छरु भारू।
तुम्ह मुनि मातु सचिव सिख मानी। पालेहु पुहुमि प्रजा रजधानी।
दो० मुखिया मुख सो चाहिये, खान पान कहु एक।
पालइ पोषइ सकल अंग, तुलसी सहित विवेक॥
प्रभु करि कृपा पांवरी दीन्ही। सादर भरत सीस धरि लीन्हीं।
दो० मांगेउ विदा प्रनाम करि, राम लिए उर लाइ।
लोग उचाटे अमर पति, कुटिल कुअवसर पाइ॥
सो कुचालि सब कहँ भइ नीकी। अवधि आस सम जीवनि जीकी।
न तरु लषन सियराम वियोगा। हहरि मरत सब लोग कुरोगा।
भटत भुज भरि भाइ भरत सो। राम प्रेम रस कहि न परत सो।
दो० बरबस लिए उठाइ उर, लाए कृपानिधान।
भरत राम की मिलनि लखि, बिसरे सबहि अपान।
अगम सनेह भरत रघुवर को। जहँ न जाइ मन बिधि हरिहर को।
दो० भरत प्रेम तेहि समय जस, तस कहि सकइ न सेषु।
कविहि अगम जिमि ब्रह्म सुख, अहमम मलिन जनेषु॥
सानुज मिलि पलमहुं सब काहू। कीन्ह दूरि दुख दारुन दाहू।
यह बड़ि बात राम कै नाहीं। जिमि घटकोटि एक रवि छाहीं।
मुनिगन गुरु धुर धीर जनक से। ज्ञान अनल मन कसे कनक से।
जासु ज्ञान रवि भव निसि नासा। वचन किरन मुनि कमल विकासा।
जे विरंचि निरलेप उपाए। पदुम पत्र जिमि जग जल जाए।

दो० तेउ विलोकि रघुवर भरत, प्रीति अनूप अपार।
भए मगन मन तन वचन, सहित विराग विचार॥

भेंटि भरत रघुवर समुझाए। पुनि रिपुदवन हरषिहिय लाए।
प्रभु पद पदुम वंदि दोउ भाई। चले सीस धरि राम रजाई।

दो० लषनहिं भेंट प्रनाम करि, सिर धरि सिय पद धूरि।
चले सप्रेम असीस सुनि, सकल सुमंगल मूरि॥

जथा जोग करि विनय प्रनामा। विदा किये सब सानुज रामा।

भरत जी अपने मनमें भगवान रामकी कृपाको सोच-सोच परम हर्ष को प्राप्त हो रहे हैं और कह रहे हैं कि—

अपडर डरेउ न शोच समूले। रविहि न दोष देव दिशि भूले।

तात्पर्य यह है कि जैसे जाग्रत के सन्मुख होते ही स्वप्नके समस्त मिथ्या भय शोक पश्चात्ताप निवृत्त हो जाते हैं उसी प्रकार भगवान रामके सन्मुख होते ही जीव मिथ्या भय शोक मोह से रहित हो जाता है और यह अनुभव करने लगता है कि अज्ञानसे भ्रममात्र शोकमोह भयसे दुखी होना पड़ा वास्तवमें मैं जन्म मरणादि क्लेशोंसे रहित शुद्ध वुद्ध नित्यमुक्त परमानन्द आत्मा हूँ। वनसे भरत जी सब लोगों के साथ अयोध्या वापिस आ गये और—

दो० राम दरस लगि लोग सब, करत नेम उपवास।
तजि तजि भूषन भोग सुख, जिअत अवधिकी आस॥

और भरत जी—

नंदि गाँव करि परन कुटीरा। कीन्ह निवास धरम धुर धीरा।
जटा जूट सिर मुनि पटधारी। महि खनि कुश साँथरी सवारी।

असन वसन वासन व्रत नेमा। करत कठिनरिषि धरम सप्रेमा।
भूषन वसन भोग सुख भूरी। मन तन वचन तजे तिन तूरी।
अवधराज सुरराज सिहाई। दशरथ धनु सुनिधनद लजाई।
तेहिपुर बसत भरत बिनुरागा। चचरीक जिमि चंपक बागा।
रमा विलास राम अनुरागी। तजत वमनजिमि जनबड़ भागी।
देह दिनहुं दिन दूवरि होई। घटइ तेज बल मुख छवि सोई।
नित नवराम प्रेम पन पीना। बढ़त धरम दल मनन मलीना।
समदम संजय नियम उपासा। नखतभरतहियविमल अकाशा।
ध्रुव विस्वास अवधि राकासी। स्वामिसुरति सुरवीथिविकासी।
राम प्रेम विधु अचल अदोषा। सहित समाज सोह नित चोखा।
उदित सदा अथइहि कवहूं ना। घटिहिन जगनभ दिनादिन दूना।
कोक तिलोकप्रीतिअतिकरिही। प्रभु प्रताप रविछविहिन हरिही।
भरत अवधि सनेह ममता की। जद्यपि राम सीम समता की।
परमारथ स्वारथ सुख सारे। भरत न सपनेहुं मनहु निहारे।
साधन सिद्धि राम पग नेहू। मोहि लखि परत भरतमत एहू।
निसिदिन सुखद सदासव काहू। ग्रसिहि न कैकइ करतव राहू।
पूरन राम सुपेम पियूषा। गुरु अवमान दोष नहिं दूषा।

दो० नित पूजत प्रभु पाँवरी, प्रीति न हृदय समाति।
मागि मागि आयसु करत, राज काज बहु भाँति।

भरतहि होइ न राजमद, विधि हरिहर पद पाइ।
कबहु कि काँजी सीकरनि, छीर सिन्धु बिनसाइ॥

जैसे मालिकके बागकी रक्षा सेवा माली ममत्व शून्य होकर करता है उसी प्रकार भरतजीने भगवान् रामके राज्य की मालीकी भाँति ममत्व शून्य होकर रक्षा की। माली बागको मालिककी सम्पत्ति मानता है परन्तु अपने शरीर मन इन्द्रियोंको मालिकका नहीं मानता उनका स्वामी अपने ही को जानता है तथा बागकी रक्षा सकाम करता है। अतः भरतजीमें सेवाभाव मालीसे अत्यन्त उच्चकोटिका है क्योंकि भरतने भगवान्के राज्यकी रक्षा निष्काम भावसे की और फलमें धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, लोक यश या भगवान रामकी कृपा तकके इच्छुक वे नहीं थे। यथा :—

दो० अर्थ न धर्म न काम रुचि, गति न चहउँ निरबान।
जनम जनम रति राम पद, यह बरदान न आन॥

जानहु राम कुटिल करि मोही। लोग कहउ गुरु साहिब द्रोही।
सीताराम चरन रति मोरे। अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरे।
जलद जनम भरि सुरतिबिसारउ। जाँचत जलु पबिपाहन डारउ।
चातक रटनि घटे घटिजाई। बढ़े प्रीति सब भांति भलाई।
कनकहिं बान चढ़इ जिमि दाहे। तिमि प्रियतमपद नेम निबाहे।
करइ स्वामि हित सेवक सोई। दूषन कोटि देइ किन कोई।
सहज सनेह स्वामि सेवकाई। स्वारथ छलफल चारि बिहाई।
आगम निगम प्रसिद्धि पुराना। सेवा धरम कठिन जगजाना।

पुलक गात हिय सिय रघुबीरू। जीह नाम जप लोचन नीरू।
लषन राम सिय कानन बसहीं। भरत भवनबसि तपतनु कसहीं।
दोउ दिसिसमुझिकहत सब लोगू। सब विधिभरत सराहन जोगू।

भरतजी मालीकी भाँति सकामी भी नहीं है तथा जैसे माली अपने शरीर मन इन्द्रियोंपर अभिमान रखता है केवल बाग को मालिक का मानता है उस प्रकार से भरतजी केवल अयोध्याके राज्य ही को भगवान रामका नहीं मानते थे वल्कि अपने शरीर मन इन्द्रियों व अपने को भी भगवान का ही मानते थे। जैसे सूर्य का प्रतिविम्ब भी विम्ब सूर्य का होता है और जिस जल में प्रतिविम्ब निवास करता है वह भी सूर्य से उत्पन्न होने से सूर्य का होता है उसी प्रकार समस्त जीव सच्चिदानन्द परमात्मा रामके प्रतिविम्ब होने से विम्ब स्वरूप परमात्मा रामके ही हैं और स्थूल सूक्ष्म कारण शरीर भी रज्जु सर्पवत सर्वाधिष्ठान सच्चिदानन्द रामके ही आश्रित होने से राम के ही हैं। अतः सब जीवों को भरत जी के समान ईश्वर अर्पण बुद्धि से निष्काम निराभिमान होकर सारे कार्य करना चाहिये। कामना, अभिमान और ममत्व शून्य हृदयों को ही वाल्मीक जी ने भगवान राम को रहने योग्य घर बतलाये हैं। यथा :—

जिनके श्रवण समुद्र समाना। कथा तुम्हरि सुभग सरि नाना।
भरहिं निरन्तर होहिं न पूरे। तिन्हके हिय तुम्ह कहुँ गृह रूरे।
लोचन चातक जिन्हकरि राखे। रहहिं दरस जलधर अभिलाषे।
निदरहिं सरित सिंधु सर भारी। रूपविन्दु लहि होहिं सुखारी।
तिन्हके हृदयसदन सुखदायक। वसहु बंधुसिय सह रघुनायक।

दो० जसु तुम्हार मानस विमल, हंसिनि जीहा जासु।
मुकताहल गुनगन चुनइ, राम बसहु हियतासु॥

प्रभुप्रसाद सुचिसुभग सुवासा। सादर जासु लहइ नित नासा।
तुम्हहि निवेदित भोजन करहीं। प्रभु प्रसाद पट भूषन धरहीं।
सीस नवहिं सुर गुरु द्विज देखी। प्रीति सहित करिविनय विसेषी।
कर नित करहिं राम पद पूजा। राम भरोस हृदय नहिं दूजा।
चरन राम तीरथ चलि जाहीं। राम बसहु तिन्हँके मन माहीं।
मंत्र राज नित जपहिं तुम्हारा। पूजहिं तुम्हहि सहित परिवारा।
तरपन होम करहिं विधि नाना। विप्र जेवाँइ देहि वहु दाना।
तुम्हते अधिक गुरुहि जिय जानी। सकल भायँ सेवहिं सनमानी।

दो० सब कर मागहिं एक फल, राम चरन रति होउ।
तिन्हके मन मंदिर बसहु, सिय रघुनंदन दोउ॥

काम क्रोध मद मान न मोहा। लोभ न छोभ न राग न द्रोहा।
जिन्हके कपट दंभ नहिं माया। तिन्हके हृदय बसहु रघुराया।
सबके प्रिय सबके हितकारी। दुखसुख सरिस प्रसंशा गारी।
कहहिं सत्य प्रिय वचन विचारी। जागत सोवत सरन तुम्हारी।
तुमहिं छाड़ि गति दूसरि नाहीं। राम बसहु तिनके मनमाहीं।
जननी सम जानहिं परनारी। धन पराव विष ते विष भारी।
जे हरषहिं परसंपति देखी। दुखित होहिंपर बिपतिविशेषी।
जिन्हहि राम तुम प्रान पिआरे। तिन्हके मन सुभसदन तुम्हारे।

दो० स्वामि सखा पितु मातु गुरु, जिनके सब तुम्ह तात ।
मन मन्दिर तिन्हके बसहु, सीय सहित दोउ भ्रात ॥

अवगुन तजि सबके गुन गहहीं । विप्र धेनु हित सङ्कट सहहीं ।
नीति निपुन जिन्हकइ जगलीका । घर तुम्हार तिन्हकर मननीका ।
गुन तुम्हार समुझइ निज दोषा । जेहि सबभाँति तुम्हार भरोषा ।
राम भगत प्रिय लागहिं जेही । तेहि उर बसहु सहित बैदेही ।
जाति पाति धन धरम बड़ाई । प्रिय परिवार सदन सुखदाई ।
सब तजि तुम्हहि रहइ उर लाई । तेहिके हृदय रहहु रघुराई ।
सरग नरक अपबरग समाना । जहँ तहँ देख धरे धनु बाना ।
करम बचन मन राउर चेरा । राम करहु तेहिके उर डेरा ।

दो० जाहि न चाहिअ कबहुं कछु, तुम्ह सन सहज सनेह ।
बसहु निरन्तर तासु मन, सो राउर निज गेह ॥

कह मुनिसुनहु भानुकुल नायक । आश्रम कहउँसमय सुखदायक ।
चित्रकूट गिरि करहु निवासू । तहँ तुम्हार सब भाँति सुपासू ।

दो० चित्रकूट महिमा अमित, कही महामुनि गाइ ।
आइ नहाय सरित वर, सिय समेत दोउ भाइ ॥

रघुपति चित्रकूट बसि नाना । चरित किए श्रुति सुधा समाना ।
सुरपति सुत धरि बायस बेषा । सठ चाहत रघुपति बल देखा ।

सीता चरन चोंच हति भागा। मूढ़ मन्दमति कारन कागा।
चला रुधिर रघुनायक जाना। सींक धनुष सायक संधाना।
प्रेरित मंत्र ब्रह्म सर धावा। चला भागि वायस भय पावा।
ब्रह्म धाम शिवपुर सब लोका। फिराश्रमितव्याकुलभय शोका।
सब जग ताहि अनलहुते ताता। जो रघुवीर विमुख सुन भ्राता।
भा निरास उपजी मन त्रासा जथा चक्र भय रिषि दुर्वासा।
आतुर सभय गहेसि पद जाई। त्राहि त्राहि दयाल रघुराई।
निजकृत कर्म जनित अघपायउँ। अब प्रभुपाहिसरन तकि आयउं।
सुनि कृपाल अति आरत बानी। एक नयन करि तजा भवानी।

तात्पर्य यह है कि गुरुजनों की परीक्षा लेनेका साहस नहीं करना चाहिए। सन्त भगवन्त की परीक्षा लेनेवाले जयन्त की भाँति एक नेत्रवाले रह जाते हैं अर्थात् परमार्थ दृष्टिसे रहित केवल व्यावहारिक दृष्टि वाले रह जाते हैं। हे उमा :—

बहुरि राम अस मन अनुमाना। होइहि भीर सबहि मोहि जाना।
सकल मुनिन सन विदा कराई। सीता सहित चले द्वौ भाई।
अत्रिके आश्रम जब प्रभु गयऊ। सुनत महामुनि हरषित भयऊ।
करि पूजा कहि वचन सुहाए। दिए मूलफल प्रभु मन भाए।
अनसुइयाके पद गहि सीता। मिली बहोरि सुशील विनीता।
रिषि पातनी मन सुख अधिकाई। आसिष देइ निकट बैठाई।
दिव्य वसन भूषन पहिराए। जे नित नूतन अमल सुहाए।

कह रिषि बधू सरस मृदुबानी। नारि धर्म कछु व्याज बखानी।
मातु पिता भ्राता हितकारी। मित प्रद सब सुनु राजकुमारी।
अमित दानि भर्ता वैदेही। अधम सोनारि जो सेव न तेही।
धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपद कालपरिखिअहिं चारी।
वृद्ध रोगवस जड़धन हीना। अंध बधिर क्रोधी अति दीना।
ऐसहु पति कर किए अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना।
एकइ धर्म एक व्रतनेमा। काय वचन मन पति पद प्रेमा।
जग पतिव्रताचारि विधिअहहीं। वेद पुरान संत सब कहहीं।
उत्तमके अस वस मन माहीं। सपनेहुं आन पुरुष जग नाहीं।
मध्यम पर पति देखइ कैसे। भ्राता पिता पुत्र निज जैसे।
धर्म विचारि समुझि कुल रहई। सो निकिष्टत्रियश्रुति असकहई।
बिन अवसर भय ते रह जोई। जानेहुं अधम नारि जग सोई।
पति वंचक परपति रति करई। रौरव नरक कल्प सत परई।
छनसुख लागिजनम सतकोटी। दुःखनसमझ तेहि समको खोटी।
बिन श्रम नारि परमगति लहई। पतिव्रत धर्म छाड़ि छल गहई।
पति प्रतिकूल जनम जँह जाई। विधवा होइ पाइ तरुनाई।

सो० सहज अपावनि नारि, पति सेवत शुभगति लहइ।
जसु गावत श्रुति चारि, अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय॥
सुनु सीता तव नाम, सुमिरि नारि पतिव्रत करहिं।
तोहि प्रान प्रिय राम, कहिउँ कथा संसार हित॥

तात्पर्य यह है कि पतिव्रता स्त्रियाँ चार प्रकार की होती हैं उत्तम पतिव्रता के अन्तःकरणमें मल विक्षेप आवरण तीनों दोषों का अभाव होता है और उसकी दृष्टि में पति परमेश्वर के अतिरिक्त समस्त जड़-जङ्गम जगत तुच्छ माया मात्र हैं।

मध्यम पतिव्रता का अन्तः करण मल विक्षेप से रहित परन्तु आवरण से युक्त होता है और मन इन्द्रियाँ सदैव उसके वश में रहती हैं। कभी चंचलताको प्राप्त नहीं होतीं। निकृष्ट तीसरी कोटिकी पतिव्रता भी निष्पाप होती है, उसके अन्तःकरणमें मल नहीं होता परन्तु विक्षेप आवरणसे युक्त है। उसका मन कभी-कभी चंचल होता है परन्तु वह लोक परलोक और धर्म ईश्वरका विचार करके अपने मन इन्द्रियोंको कुमार्गमें कदापि नहीं जाने देती। अधम चतुर्थ कोटि की पतिव्रता का अन्तःकरण मल विक्षेप आवरण तीनों दोषोंसे युक्त है परन्तु जैसे छः माहका बालक बड़ोंके द्वारा अग्नि पकड़नेसे बचाया जाता है उसी प्रकार वह अधम पतिव्रता अपने बड़ोंकी निगरानीमें रहनेके कारण दण्डके भयसे तथा अवसर न मिलनेसे पाप करनेसे बच जाती है।

जो स्त्रियाँ अपने पतिको धोखा देकर पर पुरुषसे रति करती हैं वे रौरव नर्कमें सो कल्प तक निवास करती हैं और पाप क्षीण होनेपर मृत्यु लोकमें जन्म लेती हैं और जवानी अवस्थामें विधवा हो जाती हैं तथा जबतक पति संयोग रहता है तबतक पतिसे विरोध और कलह रहती है।

अतः समुद्रमें कूदकर पहाड़से गिरकर तथा अग्निमें जलकर प्राण दे देना उत्तम है परन्तु स्त्रीको पर पुरुषसे रति कदापि नहीं करना चाहिये। अधम पतिव्रताको निकृष्ट और निकृष्ट पतिव्रताको मध्यम और मध्यम पतिव्रताको उत्तम पतिव्रता बननेका प्रयत्न करना चाहिये। हे उमा!

जहँ जहँ जाहिं देव रघुराया । करहिं मेघ तहँतहँ नभ छाया ।
पुनि आए जहँ मुनि सरभंगा । सुन्दर अनुज जानकी संगा ।
कह मुनि सुन रघबीर कृपाला । शंकर मानस राज मराला ।
तब लगि रहहु दीन हितलागी । जबलगिमिलौंतुम्हहितनुत्यागी ।
असकहि जोगअगिनि तनु जारा । राम कृपा वैकुण्ठ सिधारा ।
ताते मुनि हरि लीन न भयऊ । प्रथमहिं भेद भगति बर लयऊ ॥

राम राम कहते हुए शरीर छोड़नेसे दशरथको भी मोक्ष की प्राप्ति नहीं हुई स्वर्गकी प्राप्ति हुई ।

ताते उमा मोक्ष नहिं पावा । दशरथ भेद भगति मन लावा ।

तात्पर्य यह है कि कैवल्य मोक्षके लिए भगवान् रामके पारमार्थिक निर्गुण सच्चिदानन्द व्यापक स्वरूप की अभेद भक्ति करनी होगी । हे उमा !

पुनि रघुनाथ चले बन आगे । मुनिवरवृन्द विपुल संग लागे ।
मुनि अगस्तकरि शिष्य सुजाना । नाम सुतीक्षन रति भगवाना ।
मन क्रम वचन रामपद सेवक । सपनेहु आन भरोस न देवक ।
परेउ लकुट इव चरनन्हि लागी । प्रेममगन मुनिवर बड़ भागी ।
भुज विसाल गहि लिए उठाई । परम प्रीति राखे रघुराई ।
दो० तब मुनि हृदय धीर धरि, गहिपद बारहिं बार ।
निज आश्रम प्रभु आनि करि, पूजा विविध प्रकार ॥

कह मुनिप्रभु सुनु विनतीमोरी। अस्तुति करौंकवन विधि तोरी।
जो कोसलपति राजिव नैना। करउ सो राम हृदय मम अयना।
अस अभिमान जाइ जनि मोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे।
तुरत सुतीछन गुरु पति गयऊ। करि दडवत कहत अस भयऊ।
नाथ कोशलाधीश कुमारा। आए मिलन जगत आधारा।
सनत अगस्त तुरत उठि धाए। हरि विलोकि लोचनजल छाए।
सादर कुशल पूछि मुनि ज्ञानी। आसन वर बैठारे आनी।

पुनि करि वहु प्रकार प्रभु पूजा। मोहिं सम भाग्यवाननहिं दूजा।
ऊमरि तरु विशाल तव माया। फल ब्रह्माण्ड अनेक निकाया।
जीव चराचर जन्तु समाना। भीतर बसहिंन जानहिं आना।
ते फल भक्षक कठिन कराला। तव भय डरतसदासोउ काला।
ते तुम्ह सकल लोक पति साईं। पूछेहु मोहिं मनुज की नाईं।
यह वर मांगहु कृपा निकेता। बसहु हृदय श्रीअनुज समेता।
अविरल भगति विरति सतसंगा चरन सरोरुह प्रीति अभंगा।
जद्यपि ब्रह्म अखण्ड अनन्ता। अनुभवगम्य भजहिंजेहि संता।
अस तव रूप बखानउँ जानउँ। फिरि फिरिसगुनब्रह्म रतिमानउँ।

तात्पर्य यह है कि स्वप्नवत ब्रह्माण्डों की संख्या नहीं असंख्य हैं परन्तु सबका कालसे अन्त हो जाता है। केवल सर्वाधिष्ठान सर्वात्मा सच्चिदानन्द राम ही अनन्त हैं। राम भिन्न सर्व स्वप्नवत मिथ्या है। हे उमा! वहाँ से भगवान राम पंचवटी में आकर निवास करने लगे। वहाँ पर एक समय लक्ष्मणजी और भगवान रामके बीचमें

बड़े मार्मिक लोक हितार्थ प्रश्नोत्तर हुए। उनको तुम्हें सुनाता हूँ मन लगाकर सुनो।

एक बार प्रभु सुख आसीना। लछिमन वचन कहे छलहीना।
सुरनर मुनि सचराचर साईं। मैं पूछउं निज प्रभु की नाईं।
मोहि समुझाई कहहु सोइ देवा। सब तजि करौं चरन रज सेवा।
कहहु ज्ञान विराग अरु माया। कहहु सोभगतिकरहुजेहि दाया।

दो॰ ईश्वर जीव भेद प्रभु, सकल कहौ समुझाइ।
जाते होइ चरन रति शोक मोह भ्रम जाई॥

लक्ष्मण जी ने दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति और परमानन्दकी प्राप्ति रूप मोक्षका साधन ज्ञान पूछा और ज्ञान का साधन वैराग्य पूछा तथा वैराग्य जिस माया से करना है उस माया को पूछा और माया से वैराग्य करने का साधन भक्ति पूछी। जल तरंग वत ईश्वर और जीव में अभेद होनेपर भी ईश्वर जीवमें क्या भेद है और क्यों है समझाकर कहने के लिये अनुरोध किया क्योंकि भेद भ्रम के कारण ही भगवान राम के परमार्थ निर्गुण स्वरूप चतुर्थपाद में निजस्वरूप होनेपर भी परम प्रेम नहीं हो रहा है जिसके कारण जीव शोक मोह और विपरीत भावना में जकड़ा हुआ है। इन सब प्रश्नों के उत्तर भगवान राम संक्षेप से इस प्रकार दे रहे हैं:—

थोरेहि मह सब कहउं बुझाई। सुनहु तात मति मन चितलाई।
मैं अरु मोर तोर तैं माया। जेहि बस कीन्हें जीव निकाया।
गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई।
तेहि कर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ। विद्या अपर अविद्या दोऊ।

एक दुष्ट अतिशय दुख रूपा । जा बस जीव पराभव कूपा ।
एक रचइ जग गुन बस जाके । प्रभु प्रेरित नहिं निजबल ताके ।
ज्ञान मान जहं एकउ नाहीं । देख ब्रह्म समान सब माहीं ।
कहिअ तात सो परम बिरागी । तृनसम सिद्धितीनिगुन त्यागी ।

दो० माया ईस न आपु कहुं जान कहिअ सो जीव ।
बंध मोच्छ प्रद सर्व पर, माया प्रेरक सीव ।

धर्म ते बिरति जोग ते ज्ञाना । ग्यान मोच्छ प्रद वेद बखाना ।
जाते वेगि द्रवउं मैं भाई । सो मम भगति भगत सुखदाई ।
सो स्वतंत्र अवलंब न आना । तेहि आधीन ज्ञान विज्ञाना ।
भगति तात अनुपम सुख मूला । मिलइ जो संत होइ अनुकूला ।
भगति कि साधनकहउँ बखानी । सुगम पंथमोहिपावहि प्रानी ।
प्रथमहि विप्र चरन अति प्रीति । निजनिजकर्मनिरतिश्रुति रीती ।
एहिकर फल पुनिविषय विरागा । तब मम धर्म उपज अनुरागा ।
श्रवनादिक नव भक्ति दृढ़ाहीं । मम लीला रतिअति मनमाहीं ।
संत चरन पंकज अति प्रमा । मन क्रम वचन भजन दृढ़ नेमा ।
गुरु पितु मातु बंधु पतिदेवा । सब मोहि कहँ जानै दृढ़ सेवा ।
मम गुन गावत पुलक शरीरा । गदगद गिरा नयन बह नीरा ।
काम आदि मद दंभ न जाके । तात निरन्तर बस मैं ताके ।

दो० वचन कम मन मोरि गति, भजन करहिं निःकाम ।
तिन्हके हृदय कमल महुं, करउं सदा विश्राम ॥

भगतिजोगसुनिअतिसुख पावा। लछिमनप्रभु चरनन्हिसिरनावा।

जैसे निद्रा स्वप्न साक्षी की सत्ता पाकर अनिर्वचनीय स्वप्नको उत्पन्न भी करती है और उसमें सत बुद्धि और सुख बुद्धि तथा अहंता ममता उत्पन्न करके मोहित भी करती है उसी प्रकार माया भगवान राम से सत्ता स्फूर्ति प्राप्त करके इस अनिर्वचनीय स्वप्न वत संसार को उत्पन्न करती है और देह व दृश्य में सतबुद्धि व सुखबुद्धि तथा अहंता ममता उत्पन्न करके जीवों को मोहित किया करती है। परमार्थ स्वरूप की विस्मृतिरूप माया में मिथ्या देह दृश्य को उत्पन्न करने की सामर्थ्य को विक्षेप शक्ति कहते हैं और मैं मेरा, तू तेरा, वह उसका उत्पन्न करनेवाली सामर्थ्य को आवरण शक्ति कहते हैं जो जीव को ८४ लक्ष योनियों में व स्वर्ग नर्कमें अनादि कालसे घुमा रही है। संसारको उत्पन्न करनेवाली विक्षेप शक्ति रुपा माया ईश्वर की उपाधि है और मोहित करनेवाली आवरण शक्ति रूपा अविद्या जीव की उपाधि है। मन इन्द्रियाँ और मन इन्द्रियों द्वारा अनुभव में आनेवाला समस्त दृश्य ईश्वर की उपाधि की सृष्टि है और बारम्बार जन्म मरण के कारण अहंता ममता तथा दृढ़ रागद्वेष और ईश्वर जीव में भेद बुद्धि जीव की उपाधि आवरण शक्ति रूपा अविद्या की सृष्टि है। पहले ईश्वर सृष्टि स्वप्नवत उत्पन्न होती है तत्पश्चात जीव सृष्टि उत्पन्न होती है परन्तु ज्ञान द्वारा पहले जीव सृष्टिका नाश किया जाता है तत्पश्चात प्रारब्ध समाप्ति पर ईश्वर सृष्टि का भी अत्यन्ताभाव हो जाता है। जीव सृष्टि अर्थात् ईश्वर जीवमें भेद भ्रान्ति, कर्ताभोक्तापने की भ्रान्ति, संग भ्रान्ति, विकार भ्रान्ति तथा सच्चिदानन्द सर्वात्मा सर्वाधिष्ठान राम से भिन्न जगत में सत्यता की भ्रान्ति विद्या द्वारा नाश हो जाने पर दर्पणमें प्रतिविम्ब वत सौपाधिक भ्रम होने के कारण ईश्वर सृष्टिका अत्यन्त नाश नहीं होता मिथ्या निश्चय हो

जाता है क्योंकि सर्वात्मा सर्वाधिष्ठान सच्चिदानन्द का दृढ़ अपरोक्ष ज्ञान होनेपर आवरण शक्ति और उसका कार्य तुरन्त नाश हो जाता है परन्तु विक्षेप शक्ति और उसका कार्य प्रारब्ध पर्यन्त प्रारब्ध संसकार उदय होने परस्वप्न वत जीवनमुक्त को भी प्रतीत होता रहता है। जीवन्मुक्त के देह की प्रारब्ध समाप्त होने पर विक्षेप शक्ति और विक्षेप शक्ति के कार्य जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति को भी वही आवरण नाशक ज्ञानाग्नि अत्यन्त नाश कर देती है और स्वयं भी गायब हो जाती है। इसी ज्ञानाग्निको विद्या माया कहते हैं। ज्ञानमान वही है जिसने ईश्वर उपाधि विक्षेप शक्ति और जीव उपाधि आवरण शक्ति दोनों का बाध कर दिया है और समस्त दृश्य को सर्वात्मा सर्वाधिष्ठान ब्रह्म मात्र ही निश्चय कर लिया हो जैसे मृगजल को मरुभूमि मात्र ही निश्चय किया जाता है। जैसे तरंगें जलरूप हैं भूषण स्वर्ण रूप है, रज्जुसर्प रज्जुरूप है तथा स्वप्न स्वप्न साक्षी रूप है उसी प्रकार सम्पूर्ण त्रिलोकी को सर्वाधिष्ठान सच्चिदानन्द ब्रह्म राम मात्र जानना ही ज्ञान है अर्थात् ब्रह्म राम से अतिरिक्त अन्य की मान्यता न होना ही ज्ञान है।

अथवा जो स्वयं सिद्ध स्वतः प्रमाण है किसी प्रमाण द्वारा सिद्ध नहीं होता और जिसके द्वारा सर्व प्रमाण सत्ता स्फूर्ति पाकर साक्षी द्वारा स्वप्न चन्द्र सूर्यादिवत प्रकाशित होते हैं वह परमार्थ स्वरूप अखंड ज्ञान है और उसको अध्यस्य स्थूल सूक्ष्म कारण प्रपंच में उसी प्रकार परिपूर्ण देखना जैसे वस्त्र में सूत्र को अथवा रज्जु में आरोपित सर्प, दण्डमाला में रज्जु को परिपूर्ण देखना विद्या है जो अविद्या और उसके कार्यका तुरन्त बाध तत्पश्चात अत्यन्त नाश कर देती है।

बालू में मृगजलवत प्रतीत होने वाले तीनों गुणों व उनके कार्य को मिथ्या निश्चय करके अपने परमार्थ सच्चिदानन्द स्वरूप में तीनों

गुणों का अभाव देखना ही परम वैराग्य है। ऐसे परम विरक्त की दृष्टि में स्वप्नवत समस्त सिद्धियाँ तुच्छ हो जाती हैं। जो देहाभिमानी ईश्वर की माया को अपनी समझता है वही जीव है अथवा जो मायोपहित परमात्मा को ईश्वर, शास्त्र और गुरु कृपा के विना स्वतः नहीं जान सकता, चाहे तप से ब्रह्मा क्यों न बन जाए, वही जीव है। अथवा जो माया को व ईश्वर को और अपने स्वरूप को यथार्थ रूप से नहीं जानता है वह जीव है क्योंकि जो उस माया के अधिष्ठान सच्चिदानन्द ब्रह्मरामको जान लेता है वह वही हो जाता है जैसा कि वाल्मीक जी ने भगवान से कहा था।

जग पेखन तुम्ह देखनि हारे। विधि हरि सम्भु नचावनि हारे।
ते उन जानहिं मरम तुम्हारा। और तुम्हहि को जाननि हारा।
सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हइ हुइ जाई।
जो सबके रह ज्ञान एक रस। ईश्वर जीवहिं भेद कहउ कस।

हे उमा! भगवान राम लक्ष्मणको उपदेश करते हैं कि जिसके अज्ञान से संसार रूप बन्धन प्राप्त होता हो और ज्ञान से संसारकी अत्यन्त निवृत्ति हो जाती हो। बन्धनके उस अधिष्ठानको ही सच्चिदानन्द शिवतत्व जानना चाहिए। हे लक्ष्मण! जिस अन्तरंग साधन से मेरे सर्वात्मा सच्चिदानन्द स्वरूपका तुरन्त साक्षात्कार अर्थात् अनुभव हो जाता हो वही भक्ति है अर्थात् ब्रह्म जिज्ञासा ही भक्ति है क्योंकि जिज्ञासाके बिना कितना ही बड़ा विद्वान बुद्धिमान हो परन्तु मेरे परमार्थ स्वरूपका साक्षात्कार नहीं कर सकता।

नायमात्मा प्रवचनेनलभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुतेतेनलभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुतेतनूस्वाम॥
(कठोपनिषद)

हे उमा ! एक दिन पंचवटीमें अपनी चमड़ी की सुन्दरताका अभिमान करनेवाली सूपनखा आ गई और भगवान रामको देखकर उनसे अपना विवाह करनेकी प्रार्थना करने लगी। भगवान रामने उसके सुन्दरता के अभिमानको नाश करनेके लिए लक्ष्मण द्वारा उसके नाक और कान कटा लिए और वह रोती चिल्लाती खरदूषणके पास गई तथा रामकी आज्ञासे लक्ष्मण द्वारा नाक कान काटनेका समाचार कह सुनाया। अतः बहुत बड़ी राक्षसी सेना लेकर खरदूषण भगवान राम और लक्ष्मणजी पर चढ़ आये, परन्तु सब भगवान द्वारा मारे जानेसे निर्वाण पदको प्राप्त हुए। हे उमा ! भगवान् राक्षस शरीर-धारी जीवोंके स्थूल सूक्ष्म कारण शरीर तीनोंको नाश करके उनको विदेह मुक्ति दे देते हैं क्योंकि जबतक तीनों शरीरोंका नाश नहीं होता तबतक परम निर्वाणपदकी प्राप्ति नहीं होती है।

खरदूषण के वध का समाचार पाकर रावण को निश्चय हो गया कि पृथ्वी का भार उतारने के लिए अखिल ब्रह्माण्ड नायक सच्चिदानन्द भगवानका अवतार हो गया क्योंकि मेरे समान बलवान खरदूषनको भगवान राम के सिवा और कोई नहीं नाश कर सकता है जैसे पिण्ड में भी संशय विपर्यय रूपी खरदूषण को जो अज्ञानरूपी रावण के समान बलवान हैं, ज्ञान रूपी राम के बिना कोई साधन नाश करने में समर्थ नहीं है। अतः उसने भगवान राम के बाणों द्वारा शीघ्र मुक्ति प्राप्त करने के लिए मायावी मारीच के द्वारा भगवान रामको छल करके पंचवटी के आश्रम से दूर ले जाने के लिए सोचा जिससे वह जगज्जननी सीता का हरण कर सके। इधर सर्वज्ञ कौतुकी भगवान रामने सीता से कहा :—

सुनहु प्रियाव्रत रुचिर सुशीला। मैं कछु करबललित नर लीला।
तुम्ह पावक महुं करहु निवासा। जौ लगिकरौं निसाचर नासा।
जबहिं राम सब कहा बखानी। प्रभु पद धरि हियअनलसमानी।
निज प्रतिबिम्ब राखि तहं सीता। तैसइ शील रूप सुविनीता।
लछिमनहू यह मरम न जाना। जो कछु चरित रचा भगवाना।

हे उमा! जैसे चन्द्रिका का चन्द्र से और प्रभा का सूर्य से तथा तरंग का जल से वियोग नहीं हो सकता उसी प्रकार ब्रह्मशक्ति सीता का ब्रह्म राम से वियोग नही हो सकता और जब सीता का राम से वियोग ही नहीं हुआ तो तुम्हारा यह प्रश्न ना समझी का है कि यदि राम ब्रह्म हैं तो सीता के विरह में उनकी मति भोरी क्यों हो गई। असली सीता तो राम के पास ही रहीं केवल छाया मात्र नकली सीता को रावण हरण कर ले गया परन्तु इस लीला का पता लक्ष्मण तक को नहीं था फिर तुम कैसे जान सकती थी। रावण समझता था कि मैं सच्ची सीता हर लाया हूं और लक्ष्मण हनुमानादि भी सच्ची माता सीता के हरण हो जाने से महान दुःखी थे परन्तु भगवान राम का यह सब खेल था और वे ऊपर ऊपर से केवल दिखावा मात्र नाटक कर रहे थे जिसको देखकर तुम भी मोहित हो गई।

गुनातीत सचराचर स्वामी। राम उमा सब अंतरयामी।
कामिन्ह कै दीनता देखाई। धीरन्ह के मन बिरति दृढ़ाई।

रावण की प्रेरणा से मारीच सोने का मृग बनकर भगवान रामके सामने गया। छाया सीती की प्रेरणा से भगवान राम उस कपट मृग को मारने गये और वह कपट मृग भगवान को बहुत दूर ले गया। अन्तमें भगवान रामका वाण लगतेपर उसने लक्ष्मणको पुकारते हुए

प्राण छोड़ दिये। छाया सीताने जबरदस्ती लक्ष्मणजी को भगवान रामके पास उनको संकटमें समझकर भेज दिया। इसी बीच में छाया सीताको अकेली पाकर रावण हरण कर ले गया और मनमें जगज्जननी समझकर प्रणाम करता था और ऊपरसे सीताको भय दिखलाता था। रावणने भी रामके समान ऐसा गम्भीर नाटक किया कि इसके हृदयके भावको कोई नहीं समझ सका। रावण हृदयसे सीता रामका अनन्य भक्त था और भगवानके बाणों द्वारा निर्वाण पद प्राप्त करने के लिए सीता को हरण करके ऊपरसे वैर दिखा रहा था। रावणकी मनकी भावना सुनो—

सुर रंजन भंजन महि भारा। जौं भगवंत लीन्ह अवतारा।
तौ मैं जाइ वैरु हठि करऊँ। प्रभु सर प्रान तजे भव तरऊं।
होइहिं भजन न तामस देहा। मन क्रम बचन मंत्र दृढ़ एहा।

इसी भावना से सीताको हरण कर ले गया। रास्तामें गीधराजने इसको ललकारा परन्तु इसने उसके पंख काटकर उसको पृथ्वीपर गिरा दिया और लंकाकी ओर तेजी से भयभीत होकर बढ़ा क्योंकि—

इमि कुपंथ पग देत खगेसा। रह न तेज तनु बुधि बल लेसा।

जैसे मारीचको सोनेका मृग मान लेनेसे छाया सीताका रामसे वियोग हो गया उसी प्रकार प्रतिबिम्ब चेतन जीवका बिम्ब चेतन रामसे दुःखरूप पंच विषयोंमें सत्य बुद्धि और सुख बुद्धि करनेसे वियोग हो गया है। हे उमा!

करति विलाप जात नभ सीता। व्याध विवसजनु मृगी सभीता।
वीर रघुराया। केहि अपराध बिसारेहु दाया।

आरति हरन सरन सुखदायक। हा रघुकुल सरोज दिन नायक।
हा लछिमन तुम्हार नहिं दोषा। सो फल पायउ कीन्हेंउँ रोषा।
गिरि पर बैठे कपिन्ह निहारी। कहि हरिनाम दीन्ह पट डारी।
एहि विधि सीतहिंमो लै गयऊ। वन अशोक महँ राखतभयऊ।

इधर भगवान् राम लक्ष्मणको अपने पास आते देखकर कहने लगे कि सीताको कोई निशाचर अवश्य हर ले गया होगा।

जनक सुता परिहारहु अकेली। आयउ तात वचन मम पेली।
निसचर निकर फिरहिं बनमाहीं। मममन सीता आश्रम नाहीं।
अनुज समेत गए प्रभु तहँवा। गोदावरि तट आश्रम जहवाँ।
आश्रम देखि जानकी हीना। भए विकल जस प्राकृत दीना।
हा गुन खानि जानकी सीता। रूप सील व्रत नेम पुनीता।
हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम्ह देखी सीता मृग नैनी।
एहि विधिखोजतविलपतस्वामी। मनहु महा विरही अति कामी।
पूरन काम राम सुख रासी। मनुज चरितकर अजअविनासी।
आगे परा गीध पति देखा। सुमिरत राम चरन जिन्ह रेखा।

गीधराज ने भगवान् रामसे कहा—

नाथ दसानन यहगति कीन्हीं। तेहिखल जनकसुता हरिलीन्हीं।
लै दच्छिनदिशि गयउ गुसाईं। विलपति अति कुररीकी नाईं।
दरस लागि प्रभु राखेउ प्राना। चलन चहत अवकृपा निधाना।
राम कहा तनु राखहु ताता। मुख मुस्काइ कही तेहि बाता।

जाकर नाम मरत मुख आवा । अधमउ मुकुत होइ श्रुतिगावा ।
सो मम लोचन गोचर आगे । राखौं देह नाथ केहि लागे ।
जल भरि नयन कहहिं रघुराई । तात कर्म निजते गति पाई ।
परहित बस जिनके मनमाहीं । तिन्हँ कहुं जगदुर्लभ कछु नाहीं ।
परहित लागि तजइ जो देही । संतत संत प्रसंशहिं तेही ।
तनु तजि तात जाहु मम धामा । देउँ कहा तुम्हँ पूरन कामा ।
गीध देह तजि धरि हरि रूपा । भूषण बहु पट पीत अनूपा ।
स्याम गात विशाल भुजचारी । अस्तुति करत नयन भरि वारी ।

दो० अविरल भगति मांगि वरु, गीध गयउ हरि धाम ।
तेहि की क्रिया जथोचित, निज कर कीन्हीं राम ॥

गीध अधम खग आमिष भोगी । गति दीन्हीं जो जाँचत जोगी ।
सुनहु उमा ते लोग अभागी । हरि तजि होहिं विषय अनुरागी ।

हे उमा रास्तेमें कबन्धका उद्धार करते हुए भगवान् राम शबरीके आश्रमपर पधारे । वहाँका प्रसंग सुनो —

सबरी देखि राम गृह आए । मुनिके वचनसमुझिजिय भाए ।
सरसिज लोचन बाहु विशाला । जटा मुकुट सिर उर बन माला ।
श्याम गौर सुन्दर दोउ भाई । सबरी परी चरन लपटाई ।
प्रेम मगनमुख वचन न आवा । पुनिपुनि पद सरोज सिरनावा ।

हे उमा ! शबरी मन वचन कर्म तीनोंसे प्रेममें मग्न है और पुष्पोंके स्थानपर अपने शिरको ही भगवान रामके चरणोंपर चढ़ाकर

बार बार पूजा कर रही है। क्योंकि प्राणोंको निछावर किए बिना भक्तिपूर्ण नहीं होती। फिर शवरीने पुलकित शरीर होकर भगवान राम और लक्ष्मणके चरण धोकर चरणोदक पान किया और शरीर पर छिड़का। अभी तक भगवान् राम और लक्ष्मण खड़े ही हैं परन्तु प्रेम में समाधिस्थ होनेसे शवरीके हृदयमें अधिक देर हो जानेपर भी उनको आसनपर बिठानेका संकल्प नहीं हुआ। भगवान राम भी शवरीके अनन्य प्रेम को देखकर मार्गकी थकावट भूल गये और बार बार शवरीके सिर पर हाथ फेर रहे हैं क्योंकि—

रहति न प्रभु चितचूक किएकी। करत सुरति सत बार हिएकी।

हे उमा! चरणोदक पान करनेपर शवरीके हृदयमें भगवान राम लक्ष्मण को खड़ा देखकर उनको आसनपर बैठानेका संकल्प हुआ।

सादर जल लै चरन पखारे। पुनि सुन्दर आसन बैठारे।

दो० कंदमूल फल सुरस अति, दिए राम कहँ आनि।
प्रेम सहित प्रभु खाए, बारम्बार बखानि॥

पानि जोरि आगे भइ ठाढ़ी। प्रभुहिं बिलोकि प्रीतिअति बाढ़ी।
केहि विधिअस्तुति करौं तुम्हारी। अधम जातिमैं जड़मति भारी।
अधम ते अधमअधम अतिनारी। तिन्हमहँ मैं मतिमंद अघारी।

हे उमा! शवरी की विनय तथा प्रेमसे पूर्ण प्रार्थना को सुनकर भगवान् रामने कहा कि कोई भी जीव, धन, बल, गुण कुल कुटुम्ब जाति विद्या तथा वाक चातुर्यसे मेरी अनन्य भक्तिके बिना सर्वघट वासी सर्वात्मा मुझ सच्चिदानन्द रामको नहीं पा सकता, क्योंकि मैं केवल अनन्य भक्तिसे ही प्राप्त होने योग्य हूँ।

कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानउँ एक भगतिकर नाता।
जाति-पाँति कुल धर्म बड़ाई। धन-बल परिजन गुन चतुराई।
नवधा भगति कहउँ तोहिपाहीं। सावधान सुनु धरु मनमाहीं।
भगति हीन नर सोहइ कैसा। बिन जल बारिद देखिअ जैसा।
प्रथम भगति संतन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा।
दो० गुरुपद पंकज सेवा, तीसरि भगति अमान।
चौथि भगति मम गुन गन, करइ कपट तजि गान।
मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा। पंचम भजन सो बेद प्रकासा।
छठ दम सील बिरति बहु करमा। निरत-निरंतर सज्जन धरमा।
सातवँ सम मोहिमय जग देखा। मोते अधिक संतकर लेखा।
आठवँ जथा लाभ संतोषा। सपनेहुँ नहिं देखइ पर दोषा।
नवम सरल सब सन छल हीना। मम भरोस हिय हरषन दीना।
नव महुं एकउ जिन्हके होई। नारि पुरुष सचराचर कोई॥
सोइ अतिसय प्रिय भामिनि मोरे। सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरे।
जोगि वृन्द दुर्लभ गति जोई। तो कहुं आज सुलभ भइ सोई।
मम दर्शन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज स्वरूपा।

हे उमा! अनन्य भक्ता शवरी के अन्दर तो नवो प्रकार की भक्ति मौजूद थीं परन्तु लोक कल्याण के लिए भगवान राम ने उसको निमित्त बनाकर नवधा भक्तिका उपदेश किया। प्रथम भक्ति भगवान के अनन्य प्रेमी सन्तों से धन पुत्रादि से अधिक प्रीति करना, दूसरी भक्ति भगवत गुणानुवाद को सुनने से तृप्त न होना और जिस सन्तके उपदेश से मोहनाश होने लगे उसकी सेवा पूजा ईश्वर के समान करना तीसरी भक्ति है। जब गुरु कृपा से :—

उघरहिं विमलविलोचन हीके । मिटहिं दोष दुखभव रजनीके ।
सूझहिं रामचरितमनिमानिक । गुपुतप्रगटजहँ जोजेहि खानिक ।

तब निष्कपट भावसे अर्थात् दिखाने रिझाने धन कमानेके लक्ष्यसे रहित होकर केवल स्वान्तःसुखाय भगवत गुणानुवादका कथन करे यह चौथी भक्ति है। अहर्निश गुरुमंत्रका दृढ़ विश्वाससे स्मरण चिन्तन करना पांचवीं भक्ति है। पांचवीं भक्तिमें विश्वासपर जोर इस कारण दिया गया कि गुरुमत्र अलौकिक अर्थ में निष्ठा कराने वाला है और मंत्र जापककी बुद्धि लौकिक होती है। जैसे पृथ्वीसे सूर्य को ज्योतिष शास्त्र कई गुना बड़ा बतलाता है परन्तु नेत्रोंसे थालके बराबर ही दिखाई पड़ता है इस कारण ज्योतिपशास्त्रपर विश्वास किये विना सूर्यको पृथ्वीसे कई गुना नहीं माना जा सकता, उसी प्रकार गुरु मंत्र अपने इष्ट रामको सर्वात्मा बतलाते हैं परन्तु लौकिक बुद्धिसे राम आत्मासे भिन्न प्रतीत हो रहे हैं, गुरुमंत्र संसारको रज्जुसर्पवत बतलाता है परन्तु लौकिक बुद्धिसे संसार सत्य अनुभूत होता है। इस कारण गुरुमंत्रपर दृढ़ बिश्वास किये विना भगवान रामको निर्गुण निराकार व्यापक जानना और उनको ही अपना वास्तविक स्वरूप जानना तथा संसारको रज्जुसर्पवत सच्चिदानन्दरामका विवर्त और अविद्याका परिणाम जानना असम्भव है। अतः दृढ़ विश्वास को भक्तिका प्राण समझना चाहिये। मन इन्द्रियोंको वशमें करके समस्त अशुभ कर्मोंका परित्याग करना और शुभ कर्मों के फलकी इच्छाका त्याग करना और सज्जनोंके धर्मो में निरन्तर रत रहना छठी भक्ति है। भगवान रामने सज्जनोंके धर्मोंका निरूपण किया है। यथा--

जननी जनक बंधु सुत दारा । तन धन भवन सुहृद परिवारा ।
सबकै ममता ताग बटोरी । ममपद मनहिं बाँधि बटि डोरी ।

समदरसी इच्छा कछु नाहीं। हरष शोक भय नहिं मनमाहीं।
अस सज्जन मम उर बस कैसे। लोभी हृदय बसइ धन जैसे।

जैसे कंकड़ कोयला सोना, मणि-माणिक सर्वको पृथ्वीमय देखना चाहिए उसी प्रकार समस्त संसारको सच्चिदानन्द राममय देखना चाहिए और जैसे कंकड़ कोयलासे तथा पृथ्वीसे भी मणिमाणिक अधिक मूल्यवान हैं उसी प्रकार सोना मणिमाणिकके समान सन्तोंको कंकड़ कोयलाके समान इतर जड़ जङ्गम प्राणियोंसे तथा पृथ्वीके समान शुद्ध निर्गुण व्यापक सामान्य चेतनसे भी अधिक श्रेष्ठ मानना चाहिए क्योंकि सन्तोंके बिना मेरे परमार्थ स्वरूपका ज्ञान उसी प्रकार असम्भव है जैसे नेत्रके बिना रूपका ज्ञान असम्भव है। अतः शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्मसे भी सन्तोंको अधिक मानना और सम्पूर्ण चराचर जगतको शुद्ध सच्चिदानन्द रामसे ओतप्रोत देखना सातवीं भक्ति है। शरीरकी स्वेच्छा परेच्छा तथा अनिच्छा प्रारब्ध से सुख दुःखके आने जानेमें अपना कुछ भी हानि लाभ उसी प्रकार न समझना जैसे स्वप्नके सुख दुखसे जाग्रत शरीरका कुछ भी लाभ हानि नहीं होती और शत्रुको भी राममय जानकर उससे कदापि द्वेष न करना आठवीं भक्ति है। शरीर मन वाणीसे किसीको भी कष्ट न पहुंचाना और छल कपट भेद बुद्धिसे सर्वथा रहित हो जाना तथा जैसे तरंग जलकी ही शरणमें रहती है उसी प्रकार शुद्ध सच्चिदानन्द सर्वात्मा सर्वाधिष्ठान रामकी शरणमें रहना और संसारको स्वप्न जानकर स्वप्नके प्रिय पदार्थोंके योग वियोगमें हर्ष और दीनताको प्राप्त न होना नवीं भक्ति है। ये नव प्रकारकी भक्ति धारण करने से शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्मका अपरोक्ष ज्ञान होता है और अपरोक्ष ज्ञानसे कैवल्य परमपदकी प्राप्ति होती है। शवरीमें नवो प्रकारकी भक्ति विद्यमान होनेसे वह सर्वात्मा सर्वाधिष्ठान हरिमें उसी प्रकार

लीन हो गई जैसे घट फूटनेपर घटाकाश महाकाशमें लीन हो जाता है।

हे उमा ! शवरी को मोक्ष देनेके पश्चात् भगवान् रामके पास नारद आए और प्रश्न किया कि—

तव बिबाह मैं चाहउँ कीन्हा। प्रभु केहि कारन करै न दीन्हा।

इसका समाधान करते हुए भगवान रामने उत्तर दिया कि--

सुनु मुनितोहि कहउँ सहरोषा। भजहिंजमोहि तजिसकलभरोसा।
करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालक राखइ महतारी।

फिर नारद ने भगवान्को प्रसन्न करके एक सर्वोत्तम वर माँगा, उसको सुनो।

जद्यपि प्रभु के नाम अनेका। श्रुति कह अधिक एकते एका।
राम सकल नामनते अधिका। होउ नाथ अघखग गन बधिका।

हे उमा ! यदि नारद राम नामको सर्व नामोंसे श्रेष्ठ होनेका वर न मागते तो काशीमें समस्त जीव जन्तुओंको शरीर छोड़नेपर समान मुक्ति देने में मैं कैसे समर्थ होता। यदि तुम कहो कि प्रणव भी सब नामोंसे श्रेष्ठ है परन्तु यह भी तो विचार करो कि प्रणव मंत्र सबको सुनानेके लिए शास्त्र आज्ञा नहीं देता है। यदि शास्त्र विरुद्ध अनाधिकारीको प्रणव सुनाने भी लगूँ तो सुनने वालेको मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती। अतः नारदने राम नामको सर्वश्रेष्ठ बनानेका वर भगवान रामसे मागकर समस्त प्राणियोंका परम कल्याण किया क्योंकि राम नाममें प्राणिमात्रका समान अधिकार है। राम नाम भगवानके समस्त नामोंसे तो श्रेष्ठ है ही बल्कि रामके सगुण और निर्गुण दोनों स्वरूपोंसे भी श्रेष्ठ है सुनो—

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा।
मोरे मत बड़ नाम दुहू ते। किए जेहिजुग निजबसनिजबूते।
एक दारु गत देखिय एकू। पावक सम जुग ब्रह्म बिबेकू।
उभय अगम जुग सुगम नामते। कहेउ नाम बड़ ब्रह्म राम ते।
व्यापक एक ब्रह्म अविनासी। सत चेतन घन आनंद रासी।
अस प्रभु हृदय अछत अविकारी। सकल जीव जगदीन दुखारी।
नाम निरूपण नाम जतन ते। सोउ प्रगटत जिमिमोल रतन ते।

दो० निर्गुण ते एहि भाँति बड़, नाम प्रभाउ अपार।
कहउँ नाम बड़ रामते, निज विचार अनुसार॥

राम भगत हित नर तनुधारी। सहि संकट किए साधु सुखारी।
नाम सप्रेम जपत अनयासा। भगत होहि मुद मंगल बासा।
राम एक तापस तिय तारी। नामकोटि खल कुमति सुधारी।
रिषिहित राम सुकेतु सुता की। सहित सेनसुत कीन्ह विवाकी।
सहित दोष दुख दास दुरासा। दलइ नाम जिमिरविनिसिनाशा।
भंजेउ राम आपु भव चापू। भव भय भंजन नाम प्रतापू।
दंडक वन प्रभु कीन्ह सोहावा। जनमन अमितनामकिए पावन।
निशिचर निकर दलेरघुनन्दन। नाम सकल कलिकलुष निकंदन।

दो० शवरी गीध सुसेवकनि, सुगति दीन्ह रघुनाथ।
नाम उधारे अमित खल, वेद विदित गुन गाथ॥

राम सुकंठ विभीषन दोऊ। राखे सरन जान सब कोऊ।
नाम गरीब अनेक निवाजे। लोक वेद वर विरिद विराजे।
राम भालु कपि कटक बटोरा। सेत हेतु श्रम कीन्ह न थोरा।
नाम लेत भव सिंधु सुखाहीं। करहु विचारु सुजन मनमाहीं।
राम सकुल रन रावन मारा। सीय सहित निज पुर पगु धारा।
राजा राम अवध रजधानी। गावत गुन सुर मुनिबर बानी।
सेवक सुमिरत नाम सप्रीती। बिनु श्रमप्रबल मोहदल जीती।
फिरत सनेह मगन सुख अपने। नाम प्रसाद सोच नहिं सपने।
शुक सनकादि सिद्धि मुनि जोगी। नाम प्रसाद ब्रह्मसुख भोगी।
नारद जानेउ नाम प्रतापू। जग प्रिय हरिहरि हर प्रियआपू।
नाम जपत प्रभु कीन्ह प्रयादू। भगत सिरोमनि भे प्रहलादू।
ध्रुव सगलानि जपेउ हरि नाऊँ। पायउ अचल अनूपम ठाऊँ।
सुमिरि पवन सुत पावन नामू। अपने वस करि राखे रामू।
अपतु अजामिल गज गनिकाऊ। भए मुकुत हरि नाम प्रभाऊ।
कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। राम न सकहिं नाम गुनगाई।
चहुँ जुग तीन काल तिहुं लोका। भएनाम जपि जीव विसोका।
वेद पुरान संत मत एहू। सकल सुकृत फल राम सनेहू।
समिरिअ नाम रूप बिनु देखे। आवत हृदय सनेह विशेषे।
अगुन सगुन विच नाम सुसाखी। उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी।
रूप विशेष नाम बिनु जाने। करतलगत न परहिं पहिचाने।

नाम जीह जपि जागहिं जोगी। विरति विरञ्चि प्रपञ्च वियोगी।
ब्रह्म सुखहिं अनुभवहिं अनूपा। अकथ अनामय नाम न रूपा।
जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ। नाम जीह जपि जानहिं तेऊ।
साधक नाम जपहिं लय लाए। होहिं सिद्धि अनिमादिक पाए।
राम भगत जग चारि प्रकारा। सुकृती चारिउ अनघ उदारा।
चहूँ चतुर कहुं नाम अधारा। ज्ञानी प्रभुहिं विशेषि पियारा।
चहुँ जुगचहुं श्रतिनामप्रभाऊ। कलि विसेषि नहिं आनउपाऊ।
वंदउ नाम राम रघुवर को। हेतु कृशानु भानु हिमकरको।
विधि हरिहरमय वेद प्रान सो। अगुन अनूपम गन निधानसो।
महिमा जासु जान गन राऊ। प्रथम पूजिअत नाम प्रभाऊ।
जान आदि कवि नाम प्रतापू। भयउ शुद्ध करि उलटा जापू।
आखर मधुर मनोहर दोऊ। बरन विलोचन जन जिय जोऊ।
विवसहु जासु नाम नर कहहीं। जनम अनेक रचित अघ दहहीं।
सादर सुमिरन जे नर करहीं। भव वारिधि गो पद इव तरहीं।
जासु नाम पावक अघ तूला। सुमिरत सकल सुमंगल मूला।
सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू। लोक लाहु परलोक निबाहू।
बरनत बरन प्रीति बिलगाती। ब्रह्म जीव सम सहज संघाती।
जन मन मंजु कंज मधुकर से। जीह जसोमति हरि हलधर से।

आद्यो रा तत्पदार्थः स्यान्मकारस्त्वम्पदार्थवान्।
तयोः संयोजनमसोत्यर्थे तत्त्वविदो विदुः।

(राम रहस्योपनिषद्)

तात्पर्य यह है कि राममें र अक्षर तत्का वाचक है और म अक्षर त्वं का वाचक है और दोनोंको मिलानेवाली आ मात्रा असिकी वाचक है। अर्थात् रामका अर्थ तत्वमसि महावाक्य भी है। अतः राम नाम भगवान रामके सगुण निर्गुण दोनों स्वरूपों का साक्षात्कार करानेवाला तथा परोक्ष और अपरोक्ष ज्ञान करानेवाला है क्योंकि यह आवान्तर वाक्य भी है और महावाक्य भी है। इसी कारण राम नाम रामके सब नामोंसे श्रेष्ठ है।

संसारामय भेषजं सुखकरं श्रीजानकी जीवनम्।
धन्यास्ते कृतिनः पिबन्ति सततं श्रीरामनामामृतम्।

हे उमा! तत्पश्चात् भगवान राम ऋष्यमूक पर्वतके निकट पहुंचे और वहाँ हनूमानजीने आकर भगवान रामकी प्रार्थना की। उस सम्वादको सुनो।

नाथ जीव तव माया मोहा। सो निस्तरइ तुम्हारेहि छोहा।
सेवक सुत पति मातु भरोसे। रहइ अशोच बनइ प्रभु पोसे।
तब रघुपति उठाइ उर लावा। निज लोचन जल सींचि जुड़ावा।
सुनु कपिजिय मानसिजनिऊना। तैं मम प्रिय लछिमनते दूना।
समदरसी मोहि कह सब कोऊ। सेवक प्रिय अनन्य गति सोऊ।

दो० सो अनन्य जाके असि, मति न टरई हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर, रूप स्वामि भगवंत॥

तात्पर्य यह है कि सर्व जड़ जङ्गम प्रपंचके सहित मैं सेवक स्वर्ण भूषणवत भगवत स्वरूप ही हैं अर्थात् सच्चिदानन्द सर्वात्मा सर्वाधिष्ठान

रामसे भिन्न न मैं न जगत सर्व राम ही है। ऐसा अटल निश्चयवाला ही अनन्य भक्त कहलाता है।

हनूमानजीने सुग्रीवको भी भगवान् राम और लक्ष्मणका दर्शन कराया और सुग्रीवने उस वस्त्रको रामको दिखलाया जिसको सीताजीने लंका जाते समय फेंक दिया था। सीताजीके उस वस्त्रको पहिचानकर भगवान्ने लीलासे शोक प्रकट किया। सुग्रीवने सीताजीकी खोज करने की प्रतिज्ञा की। भगवान् रामने मनुष्य लीला करते हुए सुग्रीवसे मित्रता की और सच्चे झूठे मित्रके लक्षण बतलाए।

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिन्हहि बिलोकत पातक भारी।
निजदुखगिरिसमरज करिजाना। मित्रके दुख रंज मेरु समाना।
कुपथ निवारि सुपथ चलावा। गुन प्रगटै अवगुनहिं दुरावा।
देत लेत मन शंक न धरई। बल अनुमान सदा हित करई।
बिपति काल कर सतगुन नेहा। श्रुतिकह सन्तमित्र गुन एहा।
कसे कनक मनि पारिखि पाए। पुरुष परिखिअहिंसमय सुभाए।
आगे कह मृदु वचन बनाई। पाछे अनहित मन कुटिलाई।
जाकर चित अहि गतिसम भाई। असकुमित्र परि हरेहि भलाई।
सेवक सठ नृप कृपन कुनारी। कपटी मित्र सूल समचारी।

दो० जल पै सरिस विकाय, देखहु प्रीतिकी रीति भल।
विलग होय रस जाय, कपट खटाई परत ही॥

दूध पानीसे इतनी गहरी मित्रता करता है कि पानीको अपना स्वरूप बना देता है और दूध में मिला हुआ पानी दूधके दाममें बिक जाता

है। पानी भी दूधसे इतनी गहरी मित्रता करता है कि अग्निपर रखने से स्वयं जलेगा परन्तु दूधको नहीं जलने देगा। दूध भी पानीको जलता हुआ देखकर पानीके जलनेके पूर्व ही उफन कर अग्निमें गिर पड़ता है। मनुष्योंको भी परस्पर ऐसी ही प्रीति करना चाहिए और अपने पर्वत के समान दुःखको भूलकर मित्र के दुःखको दूर करना चाहिए और सहायता करनेमें तनिक भी कसर नहीं रखना चाहिये। भगवान रामने ऐसा ही करके दिखाया। वे अपने पर्वत के समान दुःखोंको भूल गये अर्थात् उन्होंने उस समय राज्यके त्यागकी व पिता दशरथ के मृत्यु की तथा सीताहरण की चिन्ता छोड़ दी और अत्याचारी वालिको मारकर सुग्रीवको राजा और वालिपुत्र अंगदको युवराज बनाया। बालिने भगवान रामका बाण हृदयमें लगनेपर प्रश्न किया—

धर्म हेतु अवतरेहु गोसाईं। मारेहु मोहि व्याध की नाईं।
मैं बैरी सुग्रीव पियारा। अवगुन कवन नाथ मोहि मारा।

भगवान् रामने उत्तर दिया कि—

अनुज वधू भगिनी सुत नारी। सुनु शठ कन्या सम ए चारी।
इन्हहि कुदृष्टि बिलोकई जोई। ताहि वधे कछु पाप न होई।
मूढ़ तोहि अतिसय अभिमाना। नारि सिखावन करसि न काना।
मम भुजबल आश्रित तेहि जानी। मारा चहसि अधम अभिमानी।

भगवान् राम ने बालि के प्रश्नका उत्तर देते हुए कहा कि तुम्हारे अन्दर एक नहीं अनेक अवगुण हैं जिसके कारण तुम्हारा इस प्रकार से वध करके अपराधका दण्ड दिया गया। युद्ध करते तो सन्मुख आकर ललकारते।

मानत सुख सेवक सेवकाई। सेवक बैर बैर अधिकाई।

मेरे शरणागत भक्त सुग्रीव को तू अधम शरीरका अभिमान रखनेवाला मारना चाहता है इस कारण तू मेरा वैरी है और मेरी शरण में आनेसे सुग्रीव मुझे प्रिय है। मेरा अवतार धर्मकी रक्षा और धर्म वाधक दुष्टों का संहार करने के लिए हुआ है और तू अज्ञानी अधम शरीर के वलका केवल अभिमानी ही नहीं बल्कि अपने छोटे भाई की स्त्री पर बलात्कारसे अधिकार करनेके कारण दुष्ट भी है। अतः तुझ ऐसे रावणसे भी अधिक बलवान दुष्टका संहार करना मेरे लिए उचित ही है। व्याध वत ओटसे मारनेसे तेरे वरदान की भी रक्षा हुई तेरी सेनाका भी संहार नही करना पड़ा और तुझे अपने अपराधका उचित दण्ड भी मिल गया क्योंकि जब कुदृष्टि करनेवाले को वध करना चाहिए तो अनुज वधू रतके वध में कुछ अधिक कड़ाई करनी होगी क्योंकि वध ही अन्तिम दण्ड है। अतः ओट से मारनेमें वधमें कड़ाई भी हो गई, क्योकि अकस्मात् हृदयमें वाण लगनेसे तेरी वदला लेनेकी सारी अरमानें व्यर्थ हो गईं।

हे उमा ! भगवान रामका इस प्रकारसे गम्भीर उत्तर सुनकर वालिका सारा अभिमान जाता रहा और उसके हृदय में पूरा समाधान होकर भगवान रामके प्रति अलौकिक प्रेम उमड़ पड़ा। जब वालि का ही समाधान हो गया तो दूसरेको इस विषयमें सन्देह आक्षेप करना व्यर्थ और नासमझी है। प्रेम में मग्न होकर शरीर छोड़ते समय वालि भगवान से कहने लगा कि हे प्रभो ! दण्ड पानेपर भी तथा आपके वाणके द्वारा आपके सन्मुख प्राण छोड़नेपर भी मैं अभी तक क्या पापी ही बना रहा—

दो० सुनहु राम स्वामी सन, चलन चातुरी मोर।
प्रभु अज हूं मैं पापी, अंतकाल गति तोर॥

हे उमा !

सुनत राम अति कोमल वानी। वालि शीस परसेउ निजपानी।
अचल करौं तनु राखहु प्राना। वालि कहा सुनु कृपानिधाना।

हे उमा ! वालिका धैर्य देखो कि—

परा विकल महि सरके लागे। पुनि उठि बैठ देखि प्रभु आगे।

वालि में धैर्य के साथ साथ भगवान् के चरणों में भक्ति और भगवान् के स्वरूप का ज्ञान भी था। यथा—

पुनिपुनिचितइ चरनचितदीन्हा। सफल जन्म मानाप्रभु चीन्हा।

वालि में पाण्डित्य और बुद्धि की भी कमी न थी। यथा—

जन्म जन्म मुनि जतन कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं।
जासु नाम बल शंकर काशी। देत सबहि समगति अविनासी।
मम लोचनगोचर सोइ आवा। बहुरिकिप्रभु असबनहिं बनावा।

वालि की अन्त समय की सावधानता अनुकरणीय है। यथा—

दो० राम चरण दृढ़ प्रीति करि, वालि कीन्ह तनु त्याग।
सुमन माल जिमि कंठ ते, गिरत न जानइ नाग॥

हे उमा ! उसका भाग्य देखो कि :—

राम बालि निज धाम पठावा। नगरलोग सब व्याकुल धावा।

भगवान राम के धाम के विषय में सुनो—

यत्र न सूर्यो तपति यत्र न वायुर्वाति यत्र न चन्द्रमा भाति।
यत्र न नक्षत्राणि भान्ति यत्रनाग्निर्दहतियत्र न मृत्युः प्रविशति।
यत्र न दुःखं सदानन्दं परमानन्दं शान्तं शाश्वतं सदा शिवम्।
ब्रह्मादिवन्दितं योगिध्येयं परमंपदं यत्र गत्वानिवर्तन्तेयोगिनः॥

बालि के शरीर त्यागनेपर उसकी स्त्री तारा बहुत दुःखी हो गई और भगवान ने उसको ज्ञान देकर उसके शोक मोह को दूर किया।

तारा विकल देखि रघुराया। दीन्ह ज्ञान हर लीन्हीं माया।
छित जल पावकगगन समीरा। पंच रचित यह अधम शरीरा।
प्रगट सो तनु तव आगे सोवा। जीवनित्यकेहिलगितुम्ह रोवा।
उपजा ज्ञान चरन तब लागी। लीन्हेंसि परमभगतिवर मागी।

तात्पर्य यह है कि भगवान राम की अनिर्वचनीय शक्ति से आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी क्रमशः स्वप्नवत उत्पन्न होते हैं जिनके निमित्त और उपादान दोनों कारण सच्चिदानन्द भगवान् राम ही हैं। उन अपंचीकृत पंचभूतों के मिश्रित सत्वगुण से अन्तःकरण तथा मिश्रित रजोगुण से प्राण उत्पन्न हुए। अपंचीकृत आकाश के सत्वगुणसे ज्ञानेन्द्रिय श्रोत्र तथा रजोगुण से कर्मेन्द्रिय वाक् की उत्पत्ति हुई और अपंचीकृत वायुके सत्वगुण से ज्ञानेन्द्रिय त्वचा तथा रजोगुण से कर्मेन्द्रिय हस्त की उत्पत्ति हुई और अपंचीकृत अग्नि के सत्वगुण से ज्ञानेन्द्रिय चक्षु और रजोगुणसे कर्मेन्द्रिय पाद की उत्पत्ति हुई और अपंचीकृत जल के सत्वगुण से ज्ञानेन्द्रिय रसना और रजोगुण से कर्मेन्द्रिय उपस्थ की उत्पत्तिहुई और अपंचीकृत

पृथ्वी के सत्वगुण से ज्ञानेन्द्रिय घ्राण तथा रजोगुण से कर्मेन्द्रिय गुदा की उत्पत्ति हुई।

अर्थात् मन बुद्धि चित्त अहंकार रूप अन्तःकरण तथा श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, रसना, घ्राण पंच ज्ञानेन्द्रियाँ और वाक, पाणि, पाद, उपस्थ, गुदा पंच कर्मेन्द्रियाँ तथा पंच प्राण मिलकर १९ तत्व का सूक्ष्म शरीर अपंचीकृत भूतों से उत्पन्न हुआ। फिर एक-एक भूत के आधे-आधे भागों में अन्य चारो भूतों के आठवें आठवें भाग मिलाये गए। इस प्रकार पंच भूतों का पंचीकरण किया गया और पंचीकृत पंचभूतों के मिश्रित तमोगुण से स्थूल देहों की रचना की गई। जैसे घटावच्छिन्न आकाश घटाकाश और घटानवच्छिन्न आकाश महाकाश कहलाता है उसी प्रकार स्थूल सूक्ष्म शरीरावच्छिन्न चेतन जीव है और स्थूल सूक्ष्म शरीरानवच्छिन्न चेतन परमात्मा रामका स्वरुप है जैसे घटाकाश और महाकाशका वास्तविक अभेद है केवल उपाधिकृत कल्पित भेद प्रतीत होता है उसी प्रकार हे उमा! घटा काशवत जीवका महाकाशवत सच्चिदानन्द रामके परमार्थ निर्गुण स्वरूपसे वास्तविक अभेद है केवल उपाधिकृत भेद प्रतीत होता है। जैसे घटके नाशसे घटाकाश का नाश नहीं होता उसी प्रकार पंच भौतिक देहों के नाश से जीवात्मा का नाश नहीं हो सकता उसी प्रकार जीवात्माके अविनाशी होने से देह अविनाशी नहीं हो सकते क्योंकि सत सदा सत ही रहता है और असत सदा असत ही रहता है। सत कभी असत रूप नहीं हो सकता और असत कभी सत रूप नहीं हो सकता। फिर असत क्षणभंगुर देहों के जन्म और नाश होने पर हर्ष शोक करना मूर्खता है। जैसे जीर्ण वस्त्र के त्याग और नये वस्त्र धारण करने से कोई शोक को प्राप्त नहीं होता उसी प्रकार जीर्ण देह को छोड़कर दूसरी नवीन देह धारण करने में किसी को शोक नहीं करना चाहिये और जो शरीर

छोड़कर दूसरा शरीर ग्रहण न करे विदेह मोक्ष को प्राप्त हो जावे तो उसके लिये क्या कहना है उसी का शरीर त्याग संसार में सराहनीय है शोचनीय नहीं। अहंता ममता का त्याग हो जाने पर शरीर में रहते हुए भी जीव मुक्त है और शरीर छोड़ने पर भी मुक्त है तथा अहंता-ममता से युक्त होनेपर शरीरमें रहते हुए भी बद्ध है और शरीर छोड़ने पर भी बद्ध है। जैसे ढीला कपड़ा अग्नि लगने पर शीघ्र उतार कर फेंका जा सकता है और चपका हुआ तंग कपड़ा अग्नि लगनेपर नहीं उतारा जा सकता, पहनने वालेको भी जला देता है उसी प्रकार अहंता ममता से रहित शरीर में रहना ढीलें कपड़े के समान है जिसमें कालाग्नि लगने पर असंग रहकर छोड़ा जा सकता है और अहंता ममता से युक्त होकर शरीर में रहना तंग कपड़ा पहनने के समान है जिसमें कालाग्नि लगने पर पहनने वालें को भी जलना पड़ता है अर्थात् पुनः जन्म लेना पड़ता है। जैसे नारियल में जबतक जल भरा रहता है तब तक गरी नारियल में चपकी रहती है और रस सूख जाने पर गरी नारियल के अन्दर रहते हुए उससे पृथक हो जाती है उसी प्रकार सच्चिदानन्द सर्वात्मा राम के अज्ञान पर्यन्त जीव शरीर रूपी नारियल में चपका रहता है अर्थात् अहंताममता करता रहता है और ज्ञान द्वारा अज्ञान नाश होने पर नव द्वार वाले शरीर में रहते हुए भी असंग निष्क्रिय रूप से स्थित रहता है। हे उमा! सुग्रीव को भी भगवान की कृपा से ज्ञान प्राप्त हो गया और वह भगवान राम से प्रार्थना करने लगा—

उपजा ज्ञान वचन तब बोला। नाथ कृपामन भयउ अलोला।
सुख संपति परिवार बड़ाई। सब परिहरि करिहउँ सेवकाई।
ए सब राम भगतिके बाधक। कहहिं संत तव पद अवराधक।
शत्रु मित्र सुख दुख जगमाहीं। माया कृत परमारथ नाहीं।

बालि परम हितजासु प्रसादा। मिलेहुराम तुम्हसमन विषादा।
सपने जेहि सन होइ लराई। जागे समुझत मन सकुचाई।
अब प्रभु कृपाकरहुएहि भाँती। सबतजिभजन करौं दिनराती।

सुग्रीव का यह भाव है कि जैसे जाग्रत का ज्ञान होते ही स्वप्न तथा स्वप्न के शत्रु-मित्र सुख-दुःख भ्रम मात्र हो जाते हैं उसी प्रकार भगवान राम के स्वरूप को पहिचान लेने पर यह संसार भी स्वप्न के समान भ्रममात्र निश्चय हो जाता है। जब संसार सपना है तो अज्ञान निद्रा जनित स्वप्न भ्रम से छुटकारा पाकर भगवान राम के परमार्थ स्वरूप जाग्रत की अवश्य शरण लेना चाहिये क्योंकि स्वप्न देखने वाला वास्तव में स्वप्न में नहीं होता जाग्रत में निष्क्रिय रूप से स्थित होता है। हे उमा !

जब सुग्रीव भवन फिर आये। राम प्रवरषन गिरि पर छाए।
फटिक सिला अतिशुभ्रसुहाई। सुख आसीन तहां दोउ भाई।
कहत अनुज सनकथा अनेका। भगतिबिरतिनृप नीतिबिवेका।
बरषा काल मेघ नभ छाए। गरजत लागत परम सुहाए।

दो० लछिमन देखु मोर गन, नाचत वारिद पेखि।
गृही विरति रत हरष जस, विष्णु भगत कहुं देखि ॥

दामिनि दमक रहन घनमाहीं। खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं।
बूँद अघात सहहिं गिरि कैसे। खल के वचन संत सह जैसे।
छुद्र नदी भरि चलि उतराई। जस थोरे धन खल इतराई।
समिटिसमिटिजलभरहिंतलावा। जिमिसदगुनसज्जनपहिं आवा।

भूमि परत भा ढाबर पानी। जनु जीवहिं माया लपटानी।
सुरसरि जलकृत बारुनि जाना। कबुहुँ नसंतकरहिंतेहि पाना।
सुरसरि मिलेउ सो पावन कैसे। ईस अनीसहिं अंतर तैसे।

तात्पर्य यह है कि जीवका स्वरूप शुद्ध बुद्ध मुक्त परमानन्द परिपूर्ण निर्विकार है परन्तु तीन देहों में किसी एक से भी तादात्म्य करके विकारी सा हो जाता है जैसे मिट्टी का संग करने से स्वच्छ जल मैला हो जाता है। मिट्टी में मिलने पर भी मैलापन जलका धर्म नहीं है मिट्टी का ही धर्म है। अतः जल में मैलापन आरोप मात्र है। उसी प्रकार स्थूल सूक्ष्म कारण देहों के धर्म विकार जीव में आरोप मात्र हैं परमार्थतः नहीं हैं। यदि देहों के धर्मों से जीव विकारी हो जाता तो सुषुप्ति में स्थूल सूक्ष्म देहों के विकार जीव को अनुभव करना चाहिये परन्तु समस्त स्थूल सूक्ष्म विकारों का सुषुप्ति में व्यतिरेक हो जाता है। इस कारण केवल अज्ञानवश जीव निर्विकार होने पर भी भ्रममात्र उपाधियों के धर्म विकार अपने में देखा करता है। ज्ञान द्वारा अज्ञान का बाध होते ही जीव चौरासी लक्ष योनियों व स्वर्ग नरक से छूट कर उसी प्रकार भगवान राम के निर्गुण ब्रह्म स्वरूप को प्राप्त हो जाता है जैसे नदी समुद्रको पाकर समुद्र रूपसे अचल स्थिर हो जाती है। यथा—

सरिता जलजलनिधिमहुं जाई। होइ अचल जिमिजिवहरिपाई।
नव पल्लव भए विटप अनेका। साधक मन जस मिले विवेका।
खोजत कतहुं मिलइनहिंधूरी। करइ क्रोध जिमि धरमहिं दूरी।
महा वृष्टि चलि फूटिकियारी। जिमि सुतंत्रभए बिगरहिं नारी।
कृषी निरावहिं चतुरकिसाना। जिमि बुधतजहिं मोहमदमाना।
ऊषर बरषइ तृन नहिं जामा। जिमिहरिजनहिय उपजनकामा।

विविध जन्तुसंकुल महि भ्राजा । प्रजा बाढ़ जिमि पाइ सुराजा ।
जहँ तहँ रहे पथिक थकिनाना । जिमि इन्द्रिय गनउपजे ज्ञाना ।

दो० कबहुँ प्रबल बह मारुत, जहँ तहँ मेघ बिलाहिं ।
जिमि कपूत के उपजे, कुल सद्धर्म नसाहिं ॥
कबहुं दिवस महँ निविड़ तम, कबहुंक प्रगट पतंग ।
बिनसइ उपजई ज्ञान जिमि पाइ कुसंग सुसंग ॥

बरषा बिगत सरद रितु आई । लछिमन देखहु परम सुहाई ।
उदित अगस्ति पंथ जल सोषा । जिमि लोभहिं सोषहिं संतोषा ।
सरिता जल निर्मलजलसोहा । संत हृदय जस गत मद मोहा ।
रस रस सूख सरितसरपानी । ममता त्यागकरहिंजिमि ज्ञानी ।
पंक न रेनु सोह अस धरनी । नीतिनिपुननृप कै जसिकरनी ।
जल संकोच बिकलभइमीना । अबुध कुटुम्बी जिमिधन हीना ।
बिनु घन निर्मलसोहअकाशा । हरिजनइव परिहरिसब आशा ।
कहुं कहुं वृष्टि सारदी थोरी । कोउएकपावभगति जिमि मोरी ।

दो० चले हरषि तजि नगर नृप, तापस बनिक भिखारि ।
जिमि हरि भगति पाइ श्रम, तजहिं आश्रमी चारि ॥

सुखी मीन जहँ नीरअगाधा । जिमि हरिसरन न एकउ बाधा ।
फूले कमल सोह सर कैसा । निर्गुन ब्रह्म सगुन भए जैसा ।
चक्रवाक मन दुखनिसि पेखी । जिमि दुर्जन पर संपति देखी ।

चातक रटत तृषाअति ओही। जिमि सुखलहइ नशंकर द्रोही।
सरदातप निसिससिअपहरई। संत दरस जिमि पातक टरई।
देखि इन्दु चकोर समुदाई। चितवहि जिमि हरिजन हरि पाई।
मसक दंस बीते हिम त्रासा। जिमि द्विज द्रोहकिए कुलनाशा।

दो० भूमि जीव संकुल रहे, गए सरद ऋतु पाइ।
सद्गुरु मिले जाहिं जिमि, संशय भ्रम समुदाइ॥

हे उमा! सुग्रीव राज्य में फँसकर सीता की खोज कराने में प्रमाद करने लगा। परन्तु लक्ष्मण जी को सीता जी की खोज में प्रमाद होने के कारण रुष्ट जानकर सुग्रीव ने भगवान राम के पास शीघ्र आकर अपराध की क्षमा माँगी और प्रार्थना करने लगा—

नाइ चरन सिर कहकरजोरी। नाथ मोहि कछु नाहिन खोरी।
अतिशय प्रबल देवतव माया। छूटइ राम करहु जौं दाया।
विषयवस्य सुरनरमुनि स्वामी। मैं पावँर पशुकपि अतिकामी।
नारि नयनसरजाहिन लागा। घोर क्रोधतम निसि जो जागा।
लोभ पास जेहि गरन बँधाया। सो नर तुम्ह समान रघुराया।
यह गुन साधन ते नहिं होई। तुम्हरी कृपा पाव कोइ कोई।
तब रघुपति बोले मुसुकाई। तुम प्रिय मोहि भरत जिमि भाई।
अब सोइ जतनु करहु मनलाई। जेहि विधि सीता कैसुधि पाई।

दो० एहि विधि होत बतकही, आए बानर जूथ।
नाना बरन सकल दिशि, देखिअ कीश बरूथ॥

वानर कटक उमा मैं देखा । सो मूरख जो करन चह लेखा ।
अस कपि एक न सेनामाहीं । राम कुसल जेहि पूछी नाहीं ।
यह कछु नहिं प्रभुकइ अधिकाई । विश्वरूप व्यापक रघुराई ।

तात्पर्य यह है कि जैसे वट के एक बीज में विशाल वृक्ष बनने की सामर्थ्य है फिर वही बीज अनेक बीज रूप धारण कर ले इसमें क्या आश्चर्य है उसी प्रकार जब व्यापक सच्चिदानन्द राम अनन्त ब्रह्माण्डों के रूप में प्रतीत होने की सामर्थ्य रखते हैं तो अनेक राम बनकर प्रत्येक वानर से कुशल पूछना कौन आश्चर्य की बात है ।

हे उमा ! सुग्रीव ने तब प्रमुख वन्दरों को बुलाकर आदेश और उपदेश दिया ।

सकल सुभटमिलिदच्छिनजाहू । सीता सुधि पूछेहु सब काहू ।
मनक्रमवचनसोजतन विचारेहु । रामचन्द्र कर काज सँवारेहु ।
भानु पीठि सेइअ उर आगी । स्वामिहिं सर्वभाव छल त्यागी ।
तजि माया सेइअ परलोका । मिटहिं सकल भव संभव शोका ।
देह धरे कर यह फल भाई । भजिअ राम सब काम बिहाई ।
सोइ गुनज्ञ सोई बड़ भागी । जो रघुवीर चरन अनुरागी ।
आयसु मागि चरन सिर नाई । चले हरषि सुमिरत रघुराई ।
पाछे पवन तनय सिरनावा । जानि काज प्रभु निकट बुलावा ।
परसा सीस सरोरुह पानी । कर मुद्रिका दीन्ह जन जानी ।
बहु प्रकारसीतहिसमुझाएहु । कहि बलविरहवेगितुम्ह आएहु ।

दो० चले सकल वन खोजत, सरिता सर गिरि खोह ।
रामकाज लयलीन मन, विसरा तन कर छोह ॥

लागि तृपा अतिशयअकुलाने । मिलइनजल घन गहन भुलाने ।
मन हनुमान कीन्ह अनुमाना ; मरनचहत सबविनु जलपाना ।
चढ़िगिरिशिखरचहूँदिशि देखा । भूमिविवर एक कौतुकपेखा ।
चक्रवाक वक हंस उड़ाहीं । वहुतक खगप्रविसहिं तेहिमाहीं ।

हे उमा ! हनुमान ने उस गुफा में पक्षियों को प्रवेश करते देखकर अनुमान कर लिया कि इसमें जल अवश्य होगा। प्रत्यक्ष ज्ञान होने में अनुमान प्रमाण वहुत सहायक होता है। जिसको सच्चिदानन्द राम में आत्मभाव अपरोक्ष न हुआ हो उसको आत्माकी सत्ता चेतनता आनंदजाग्रत स्वप्नसुषुप्तिमें अनुभव करके सत्यज्ञान अनन्त भगवान राम से आत्माको अभिन्न अनुमान कर लेना चाहिये क्योंकि चेतन चेतन से स्वरूपतः भिन्न नहीं हो सकता उपाधि से भले ही घटाकाश मठाकाश वत भिन्न प्रतीत होता हो ।

हे उमा ! उस गुफा में जाकर तपस्वनी स्वयंप्रभा से सबकी भेंट हुई और उसकी कृपा से फल खाकर और जलपान करके गुफा से वाहर आ गये और सबने अपने को उसके योगवल से समुद्र के पास खड़ा पाया। स्वयंप्रभा भी वहाँ से भगवान रामके पास चली गई और भगवान से अनन्य भक्ति का वर पाकर तप करने के लिए वद्रिकाश्रम को चली गई ।

वन्दरों को समुद्र के किनारे खड़ा देखकर एक महान विशाल काय सम्पाती नामक गीध क्षुधा से व्याकुल होने से उनको खाने दौड़ा परन्तु अपने भ्राता जटायु का समाचार पाकर उसने वंदरों को अभय कर दिया और अपनी पूर्व कथा सुनाने लगा कि :—

हम द्वौ बंधु प्रथम तरुनाई । गगन गए रवि निकट उड़ाई ।
तेज न सहिसकसो फिरआवा । मैं अभिमानी रवि नियरावा ।
जरे पंख अति तेज अपारा । परेउ भूमि करि घोर चिकारा ।
मुनि एक नाम चन्द्रमा ओही । लागी दया देखि करि मोही ।
बहु प्रकार तेहि ज्ञान सुनावा । देह जनित अभिमान छुड़ावा ।

हे उमा ! अज्ञान से उत्पन्न होने के कारण देहाभिमान का नाश ज्ञान होने पर ही होता है और ज्ञान सत्संग से होता है और सत्संग भगवात् कृपा से होता है ।

बड़े भाग्य पाइय सतसंगा । विनहि प्रयास होहि भव भंगा ।

सत्संग में हरि कथा क्या होती है और उसका क्या फल है सुनो :—

दो० ब्रह्म निरुपन धरम विधि, बरनहिं तत्व विभाग ।
कहहिं भगति भगवंत कै, संजुत ज्ञान विराग ॥
पुन्यपुंज बिनु मिलहि न संता । सतसंगति संसृत कर अंता ।
दो० गिरिजा सन्त समागम, सम न लाभ कछु आन ।
बिनु हरि कृपा न होई सो, गावहिं वेद पुरान ॥
बिनु सत्संग न हरि कथा, तेहि बिनुमोह न भाग ,
मोह गए बिनु राम पद, होइ न दृढ़ अनुराग ॥
बिनु सत्संग विवेक न होई । राम कृपा बिनुसुलभ न सोई ।
मज्जन फल पेखिय ततकाला । काक होहिंपिक बकहु मराला ।
सुनि आचरज करै जनि कोई । सतसंगति महिमा नहिं गोई ।

कुदा

बाल्मीक नारद घट जोनी। निज-निजमुखनिकही निजहोनी।
जलचर थलचर नभचर नाना। जे जड़ चेतन जीव जहाना।
मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेहिजतनजहाँ जेहि पाइ।
सो जानब सतसंग प्रभाऊ। लोकहु वेद न आन उपाऊ।
सतसंगत मुद मंगल मूला। सोइ फल सिधिसब साधनफूला।
सठ सुधरहिं सतसंगति पाई। पारस परसि कुधातु सुहाई।
हानि कुसंग सुसंगति लाहू। लोकहु वेद विदित सब काहू।
गगन चढ़इ रजपवन प्रसंगा। कीचहिं मिलइ नीच जल संगा।
साधु असाधु सदन सुकसारी। सुमिरहिं रामदेहि गनि गारी।
धूम कुसंगति कारिख होई। लिखिअ पुरान मंजु मसि सोई।
सोइ जलअनल अनिलसंघाता। होई जलद जग जीवन दाता।
धूमउ तजइ सहज करुआई। अगरु प्रसंग सुगंध बसाई।
मुद मंगल मय संत समाजू। जो जग जगंम तीरथ राजू।
राम भक्ति जहँ सुरसरि धारा। सरसइ ब्रह्म विचार प्रचारा।
विधि निषेधमय कलिमल हरनी। करम कथा रविनंदनिवरनी।
हरि हर कथा विराजति वेनी। सुनत सकल मुद मंगल देनी।
बटु विश्वास अचल निज धरमा। तीरथराज समाज सुकर्मा।
सबहिं सुलभ सब दिनसब देशा। सेवत सादर समन कलेशा।
अकथ अलौकिक तीरथ राऊ। देइ सद्य फल प्रगट प्रभाऊ।

दो० सुनि समुझहिं जन मुदितमन, मज्जहिं अति अनुराग ।
लहहिं चारि फल अछत तनु, साधु समाज प्रयाग ॥

हे उमा ! सम्पाति को चन्द्रमा मुनि ने ज्ञान देकर बतलाया कि—

त्रेता ब्रह्म मनुज तनु धरही । तासु नारिनिसिचर पति हरिही ।
तासु खोज पठइहिं प्रभु दूता । तिन्हहि मिले तैं होव पुनीता ।
जमिहहिं पंख करसिजनि चिंता । तिन्हहि देखाइदेहेसु तैं सीता ।

यह सब कथा सम्पाती ने वन्दरोंको कह सुनाई और उसने वन्दरों से कहा—

गिरि त्रिकूट ऊपर बस लंका । तहँ रह रावन सहज असंका ।
तहँ अशोक उपवन जँह रहई । सीता बैठि सोच रत अहई ।
जो नाघइ सत जोजनसागर । करइ सोराम काजमति आगर ।
मोहि विलोकि धरहु मनधीरा । राम कृपा कस भयउ शरीरा ।
पापिउ जाकर नाम सुमिरहीं । अति अपारभव सागर तरहीं ।
तासु दूत तुम्ह तजि कदराई । राम हृदय धरि करहु उपाई ।

सम्पाती की कथा से उत्साहित होकर जामवंत हनुमान से कहने लगे :—

कहइ रीछ पति सुन हनुमाना । काचुप साधि रहउ बलवाना ।
पवन तनय बल पवन समाना । बुधि विवेक विज्ञान निधाना ।
कवन सोकाज कठिनजगमाहीं । जो नहिं होइ तात तुम्ह पाहीं ।
राम काज लगि तव अवतारा । सुनतहिं भयउ पर्वताकारा ।

कनक वरन तन तेज विराजा। मानहु अपर गिरिन्हकर राजा।
सिंहनाद करि वारहिं वारा। लीलहिंनाघउँ जलनिधि खारा।
सहित सहाय रावनहिं मारी। आनउँ इहाँ त्रिकूट उपारी।
जामवंत मैं पूछउँ तोही। उचित सिखावन दीजहु मोहीं।
एतना करहु तात तुम जाई। सीतहिं देखि कहहु सुधि आई।

जैसे हनूमान जी अपने बल को भूल गये उसी प्रकार जीव भी अपने परमार्थ स्वरूप अधिष्ठानान्श कूटस्थ को अनादि काल से भूला हुआ है जो सच्चिदानन्द सर्वात्मा सर्वाधिष्ठान रामसे अभिन्न है। जब भगवत कृपा से सत्संग और सद्गुरुकी प्राप्ति होती है तो उनके उपदेश से जीव विपरीत भावना को छोड़कर अपने सहज स्वरूप को प्राप्त होकर कृतकृत्य हो जाता है।

हे उमा! हनूमान समुद्र पार करने के लिए आकाश मार्ग से अति वेग से उड़े और आठो सिद्धियों से स्थान-स्थान पर आवश्यकता पड़ने पर काम लिया। गरिमा सिद्ध का प्रयोग देखो। यथा :—

जेहि गिरि चरन देइ हनुमन्ता। चलेउ सो गा पाताल तुरंता।

महिमा सिद्धि का प्रयोग —

जस जस सुरसा वदन बढ़ावा। तासु दून कपि रूप देखावा।
सोरह योजन मुखतेहिं ठयऊ। तुरत पवन सुत बत्तिस भयऊ।

देवताओं की भेजी हुई सर्पों की माता सुरसा की परीक्षा में उत्तीर्ण होकर हनूमान जी आगे बढ़े और एक राक्षसी ने इनकी छाया पकड़ ली।

निसिचरि एक सिन्धुमहुँ रहई । करि माया नभके खग गहई ।
जीव जन्तु जे गगन उड़ाहीं । जल विलोकितिन्हकै परिछाहीं ।
गहइ छाँह सक सो न उड़ाई । एहिविधि सदा गगन चरखाई ।
सोइ छल हनूमान कहँ कीन्हा । तासु कपटकपि तुरतहिंचीन्हा ।
ताहि मारि मारुत सुत वीरा । वारिधि पार गयउ मति धीरा ।

छाया पकड़ने वाली राक्षसी की भाँति अविद्या भी राक्षसी है जो चेतन की छाया ( चिदाभास ) को पकड़ कर संसार चक्र में घुमाया करती है । जबतक इस अविद्या राक्षसी का नाश नहीं किया जाता तब-तक संसार समुद्र से जीव पार नहीं हो सकता ।

समुद्र पार करके लंका में प्रवेश करने के लिए हनूमान जी ने अणिमा सिद्धिका प्रयोग किया—

मसक समान रूप कपि धरी । लंकहि चलेउ सुमिरि नर हरी ।

हे उमा भगवान राम जिसपर अनुकूल हो जाते हैं उसको प्राकाम्य सिद्धि मिल जाती है यथा—

गरल सुधा रिपु करहिं मिताई । गोपद सिन्धु अनल सितलाई ।

देखो हनूमान जी को भगवत कृपा से सुरसा का विष अमृत के समान हो गया तथा लंकिनी राक्षसी शत्रुता छोड़कर मित्र बन गई और कहने लगी—

तात मोर अति पुन्य वहूता । देखेउँ नयन राम कर दूता ।

दो० तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिअ तुला एक अंग ।
तूल न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सत्संग ॥

प्रविसि नगर कीजे सब काजा। हृदय राखि कोशलपुर राजा।

हनूमान जी केलिए समुद्र भी गोपद के समान हो गया क्योंकि उसके पार करने में कठिनता और देर नहीं हुई शीघ्र सहज ही में उस पार पहुंच गए। लंका जलाते समय अग्नि भी भगवत् कृपा से इनको शीतल हो गई इसको प्राकाम्य सिद्धि समझना चाहिए। लंका में प्रवेश करने पर हनूमान जी विभीषण के गृह के पास रात्री के चौथे प्रहर में पहुंचे और वहाँ विभीषण को भगवन्नाम कीर्तन करते हुए सुनकर उससे पहिचान करने की इच्छा हुई। हनूमान जी ने विप्र रूप धारण करके विभीषण को सब अपनी कथा सुनाई और पूछा कि इस राक्षस नगरी में तुम किस प्रकार रहते हो इस प्रश्न के उत्तर में उसने कहा—

सुनहु पवनसुत रहनि हमारी। जिमि दसनन्हिमहुं जीभ बिचारी।

तात्पर्य यह है कि जैसे दाँतों के बीच में बिचारी जीभ रहती है और कभी-कभी दाँतों द्वारा कट जाने पर भी दातों से कोई बदला नहीं लेती बल्कि कोई दुखदाई पदार्थ दाँतों में अटक जाने पर शीघ्र ही उसको निकालने का पूरा यत्न करती है और जब तक निकाल नहीं देती तब तक चैन नहीं लेती। इस प्रकार दाँतों द्वारा बार-बार काटे जाने पर भी उसका हित करती रहती है उसी प्रकार अत्याचारी राक्षसों के बीच में मेरी भी रहनी समझो। इनके द्वारा सताये जाने पर भी मैं इनका हित ही किया करता हूँ।

हे उमा! विभीषण की यह रहनी मनुष्य मात्र को अनुकरणीय है कि बुराई का बदला भलाई से दे।

उमा सन्त कइ इहइ बड़ाई। मंद करत जो करइ भलाई।

विभीषण द्वारा सीता जी का पूरा पता पाकर हनूमान जी अशोक वाटिका में जाकर उसी वृक्ष के ऊपर छिपकर बैठ गए जिसके नीचे सीता जी भगवान राम के वियोग में महान दीन अवस्था में बैठी हुई शोकमें मग्न थीं। उसी समय रावणने आकर सीता जी को शाम, दान दण्ड भेद दिखलाकर अपने वश में करना चाहा परन्तु—

तृन धरि ओट कहति वैदेही। सुमिरि अवधपति परम सनेही।
सुनु दसमुख खद्योतप्रकाशा। कबहुंकि नलिनीकरइ विकासा।
सुनत वचनपुनि मारनधावा। मयतनयां कहिं नीति बुझावा।

सीताजीने रावण को अपने हृदय का यह भाव प्रकट करके दिखलाया कि जैसे मछली के शरीर के लाखों टुकड़े भी कर दिये जायें तब भी वह जल को छोड़कर अन्य किसी से प्रेम नहीं कर सकती उसी प्रकार चाहे तू मेरे शरीर के लाखों टुकड़े अपनी तलवार से कर दे परन्तु मैं भगवान् राम को छोड़ कर तुझको कदापि कुछ भी नहीं समझ सकती। तू मेरी दृष्टि में उसी प्रकार कुछ नहीं है जैसे जाग्रत की शरणलेनेवाले की दृष्टि में स्वप्न कुछ नहीं रहता। यह सुनकर रावण क्रोधित होकर बोला—

मास दिवस महुँ कहा न माना। तौ मैं मारवि काढ़ि कृपाना।

ऐसा कहकर रावण लौट गया और सीता को अत्यन्त दुखी देखकर हनूमान ने भगवान राम की मुद्रिका सीता जी की गोद में डाल दी और—

राम चन्द्र गुन वरनै लागा। सुनतहिं सीता कर दुख भागा।
तव हनुमंत निकट चलि गयऊ। फिर वैठी मनविस्मय भयऊ।
राम दूत मैं मातु जानकी। सत्य सपथ करुना निधानकी।

यह मुद्रिका मातु मैं आनी। दीन्हि राम तुम्ह कहँ सहिदानी।
जनि जननी मानहुजिय ऊना। तुम्ह ते प्रेम राम के दूना।
कहेउ राम वियोग तव सीता। मो कहुं सकल भए विपरीता।
तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एक मन मोरा।
सो मन सदा रहत तोहिपाहीं। जानु प्रीति रस एतनेहि माहीं।
प्रभु सन्देश सुनत वैदेही। मगन प्रेम तन सधि नहिं तेही।
कह कपि हृदय धीर धरु माता। सुमिरु राम सेवक सुखदाता।
उर आनहु रघुपति प्रभुताई। सुनि मम वचन तजहु कदराई।
कछुक दिवस जननाथरुधीरा। कपिन्ह सहितअइहहिं रघुवीरा।
निसिचर मारि तोहिलै जैहहिं। तिहुंपुर नारदादि जस गैहहिं।
मन सन्तोष सुनत कपिवानी। भगति प्रताप तेज वल सानी।
आसिष दीन्हि रामप्रिय जाना। होहु तात वलशील निधाना।
अजर अमर गुननिधि सुतहोहू। करहु बहुत रघुनायक छोहू।
करहुं कृपा प्रभु अस सुनि काना। निर्भर प्रेम मगन हनुमाना।
वार वार नाएसि पद शीशा। बोला वचन जोरि कर कीशा।
अब कृतकृत्य भयउँ मैं माता। आशिष तव अमोघ विख्याता।

हे उमा! सीता जी से अमर होनेका आशीर्वाद पाकर हनूमान् जी ने उस वाटिका को फल खाते हुए उजाड़ डाला और अनेक राक्षसों के सहित रावण पुत्र अक्षयकुमार को मार डाला। अक्षय कुमार की मृत्यु सुनकर रावण ने क्रोधित होकर हनुमान को पकड़ लाने के लिए मेघनाद को भेजा। उसने आते ही—

ब्रह्म बान कपि कहुँ तेहिं मारा। परतिहुं बार कटक सङ्घारा।
तेहि देखा कपि मुरछित भयऊ। नाग पाश बाँधेसि लै गयऊ।
जासु नाम जपि सुनहु भवानी। भव बंधन काटहिं नर ज्ञानी।
तासु दूत कि बंध तरु आवा। प्रभुकारज लगिकपिहि बँधावा।
कपि बंधन सुनि निसिचर धाए। कौतुक लागि सभासब आए।
दसमुख सभा दीखि कपि जाई। कहि न जाइ कछुअति प्रभुताई।
कर जोरे सर दिसिप बिनीता। भृकुटि बिलोकत सकल सभीता।

हे उमा! यहाँ पर हनूमान की ईशत्वसिद्धि का साक्षात् अनुभव करो:—

देखि प्रताप न कपिमन शंका। जिमि अहिगनमहुँगरुड़ अशंका।

रावण के पूछने पर:—

कह लंकेश कवन तैं कीसा। केहि के बल घालेसि बन खीसा।

हनूमान जी का उत्तर सुनो:—

सुनु रावण ब्रह्माण्ड निकाया। पाइ जासु बल बिरचति माया।
जाके बल बिरञ्चि हरि ईसा। पालत सृजत हरत दस शीशा।
जा बल शीश धरत सहसानन। अंड कोष समेत गिरि कानन।
धरइ जो बिबिध देह सुरत्राता। तुम्ह से शठन्हसिखावन दाता।
हर कोदंड कठिन जेहि भंजा। तेहि समेत नृप दलमद गंजा।
खरदूषन त्रिसिरा अरु बाली। बधे सकल अतुलित बलशाली।

दो० जाके बल लवलेशतें, जितेउ चराचर झारि।
तासु दूत मैं जाकरि, हरि आनेहु प्रिय नारि॥

हनूमानजी के उत्तर का तात्पर्य यह है कि जिसकी शक्ति से संसार की उत्पत्ति, पालन, संहार होता है तथा ब्रह्मा से स्थावर पर्यन्त जिसकी शक्ति को उधार लेकर शक्तिवान् होते हैं और जिसकी लवलेश मात्र शक्ति पाकर तू चराचर जगत को जीतने में उसी प्रकार समर्थ हुआ जैसे स्वप्न साक्षी आत्मा की लवलेश मात्र शक्ति पाकर स्वप्न का सिंह वन के समस्त पशुओं को जीत लेता है अथवा जैसे चुम्बक पर्वत की लवलेश शक्ति पाकर लोहा चलने में समर्थ हो जाता है और बिम्ब सूर्य की लवलेशमात्र शक्ति पाकर जल में पड़ा हुआ सूर्य का प्रतिबिम्ब दीवार को प्रकाशित करने में समर्थ हो जाता है तथा सामान्य अग्निकी लवलेश मात्र शक्ति का दिया सलाई की बत्ती में प्राकट्य होने से वह पूरे घर को जलाने में समर्थ हो जाती है। हे रावण! मैं उस अखिल ब्रह्माण्डनायक सर्वाधिष्ठान सर्वेश्वर सर्वात्मा सच्चिदानन्द राम का दूत हूँ। हे रावण!

रामचरन पंकज उर धरहू। लंका अचल राजतुम्ह करहू।
राम नाम बिन गिरा न सोहा। देखु विचारि त्यागिमद मोहा।
वसन हीन नहिं सोह सुरारी। सब भूषन भूषित वर नारी।
राम विमुख संपति प्रभुताई। जाइ रही पाई बिनु पाई।
सजल मूल जिन्हसरितन्हनाहीं। बरषि गए पुनि तबहिं सुखाहीं।
सुनु दसकंठ कहउ पन रोपी। विमुख राम त्राता नहिं कोपी।
जाके डर अति काल डराई। जो सुर असुर चराचर खाई।
तासों वैर कबहूं नहिं कीजै। मोरे कहे जानकी दीजै।
शंकर सहस विष्णु अज तोही। सकहिं न राखि रामकर द्रोही।

दो० मोह मूल बहु शूल प्रद, त्यागहु तम अभिमान।
भजहु राम रघुनायक, कृपासिन्धु भगवान॥

जैसे स्वप्न और स्वप्नदेह में मिथ्या अभिमान का कारण सर्वाधिष्ठान सर्वात्मा सच्चिदानन्द राम की विस्मृति रूप मोह है, जैसे स्वप्न देह का अभिमान स्वप्न में दैहिक दैविक भौतिक त्रिविध दुःखों को और अविद्या अस्मिता रागद्वेष, अभिनवेश पंचक्लेशों को देनेवाला है उसी प्रकार जाग्रत देहका अभिमान भी जाग्रत में त्रिविधि दुःखों और पंच क्लेशों को देने वाला है। जैसे अन्धकार को उत्पन्न करने वाली रात्रि का सूर्य के विना नाश नहीं हो सकता उसी प्रकार देहाभिमान रूपी तम को उत्पन्न करने वाली मोह रूपी रात्रि का नाश सच्चिदानन्द सर्वात्मा अखिललोक को विश्राम देनेवाले सुख धाम भगवान राम के स्मरण विना असम्भव है क्योंकि जो भ्रम जिसके विस्मरण से उत्पन्न होता है वह उसी के स्मरण से नाश हो सकता है। हे रावण! मैं रावण हूँ इस प्रकार का त्रिविधि दुःखों और पंच क्लेशों का जनक देहाभिमान तुझको सर्वभूतान्तरात्मा सच्चिदानन्द राम के विस्मरण से उत्पन्न हुआ है। अतः उन सर्वाधिष्ठान सर्वरूप सर्व उरवासी सच्चिदानन्द राम का तुझको स्मरण करना उसी प्रकार अवश्य कर्तव्य है जैसे रज्जुसर्प से भयभीत को रज्जु का स्मरण अथवा स्वप्न के राज्य के अभिमानी को जाग्रत का स्मरण अवश्य कर्तव्य है।

हे उमा!

दो० फूलइ फरइ न बेत, जदपि सुधा बरसहिं जलद।
मूरख हृदय न चेत, जौं गुरु मिलहिं विरंचि सम॥

तात्पर्य यह है कि निन्दक अश्रद्धालु मूर्ख को उपदेश देना व्यर्थ है। जैसे गाय के थन से किलनी रुधिर निकाल कर पिया करती

है दूध नहीं पीती उसी प्रकार हित उपदेशक का उपदेश खल ग्रहण नहीं करता बल्कि उस निर्दोष हित उपदेशक में अनेक प्रकार के दोषों का दर्शन किया करता है। यही कारण है कि परम हितकारी सत्संग से अश्रद्धालु मूर्ख को कोई लाभ नहीं होता।

हे उमा! इतना सुन्दर उपदेश सुननेपर रावण हनूमान से क्या कहता है सुनो—

**बोला बिहँसि महाअभिमानी। मिला हमहि कपिगुरु बड़ ज्ञानी।**
**मृत्यु निकट आई खल तोही। लागेसि अधम सिखावन मोही।**

तत्पश्चात् रावण ने हनूमान से पूछा—

**मारे निसिचर केहि अपराधा। कहु सठ तोहिन प्रानकी बाधा।**

तब हनुमानजी ने उत्तर दिया—

**खायउँ फल प्रभु लागी भूखा। कपि सुभावते तोरे रुखा।**
**सबके देह परम प्रिय स्वामी। मारहिं मोहि कुमारग गामी।**
**जिन्ह मोहि मारा ते मैं मारे। तेहिपर बाँधेउ तनय तुम्हारे।**
**मोहि न कछु बाँधेकर लाजा। कीन्ह चहउँ निज प्रभु करकाजा।**

हे उमा! हनूमान के हृदय में लंका को जलानेका संकल्प हो रहा था। इधर रावण ने भी हनूमान के अनुकूल ही राक्षसों को आज्ञा दी कि—

**दो० कपि के ममता पूँछपर, सबहिं कहउँ समझाइ।**
**तेल बोरि पट बाँधि पुनि, पावक देहु लगाइ।**

**वचन सुनत कपि मन मुसुकाना। भइ सहाय सारद मैं जाना।**

हनूमान जी की प्राप्ति सिद्धि से शारदा भी अनुकूल हो गई।

रहा न नगर वसन घृत तेला। वाढ़ी पूंछ कीन्ह कपि खेला।
कौतुक कहँ आए पुरवासी। मारहिं चरन करहिं वहु हांसी।
वाजहिं ढोल देहिं सब तारी। नगर फेरि पुनि पूंछ प्रजारी।

हे उमा! हनूमान जी का भक्तों में सबसे ऊँचा स्थान इसी कारण है कि इन्होंने भगवत कार्य करने में नीच राक्षसों के चरणों के प्रहार भी सहने में अपना परम सौभाग्य समझा।

पावक जरत देखि हनुमंता। भयउ परम लघु रूप तुरंता।
निबुकि चढ़ेउ कपि कनक अटारीं। भई सभीत निसाचर नारीं।

दो० हरि प्रेरित तेहि अवसर, चले मरुत उनचास।
अट्टहास करि गरजा, कपि बढ़ि लाग अकास।

हनूमान की वशित्व सिद्धि से उन्चासो पवन चलने लगे।

देह बिसाल परम हरुआई। मन्दिर ते मन्दिर चढ़ धाई।

देह को हल्का करने में हनूमान जी ने लघिमा सिद्धि का प्रयोग किया।

जारा नगर निमिष एक माहीं। एक बिभीषन कर गृह नाहीं।
ताकर दूत अनल जेहि सिरिजा। जरा न सो तेहि कारन गिरिजा।
उलटि पलटि लंका सब जारी। कूदि परा पुनि सिंधु मझारी।

लंका से वापिस जाते समय हनूमान जी सीता जी के पास गए और सीताजी ने चूड़ामणि उतार कर हनूमान को अपना चिन्ह दे दिया और भगवान राम से संदेशा कहलाया :—

कहेउ तात अस मोर प्रनामा। सब प्रकार प्रभु पूरन कामा।
दीन दयाल बिरदु संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी।

मास दिवस महुँ नाथन आवा । तौ पुनि मोहिं जिअत नहिं पावा ।
कह कपि केहिविधि राखौं प्राना । तुम्हहूं तातकहत अब जाना ।
तोहि देखि सीतलभइ छाती । पुनि मो कहुं सोइदिनुसो राती ।

दो० जनक सुतहि समझाइ करि, बहु विधि धीरज दीन्ह ।
चरन कमल सिर नाइ कपि, गवनु राम पहिं कीन्ह ।

नाघि सिन्धुएहि पारहिं आवा सबद किलकिला कपिन्ह सुनावा ।
मुख प्रसन्न तन तेज विराजा । कीन्हेसि रामचन्द्र कर काजा ।

हनूमान जी सुग्रीवादि से मिले और कपियों के साथ भगवान राम के पास आए ।

फटिक शिला बैठे द्वौ भाई । परे सकल कपि चरनन्हि जाई ।

भगवान राम ने हनूमान जी से पूछा—

कहहु तात केहिभाँति जानकी । रहति करति रच्छास्व प्रानकी ।

हनूमान जी ने सीता जी का दिया हुआ चूड़ामणि भगवान रामको दिया और सीता जी का समाचार सुनाने लगे ।

दो० नाम पाहरू दिवस निसि, ध्यान तुम्हार कपाट ।
लोचन निज पद जन्त्रित, जाहिं प्रान केहि बाट ॥

नाथ जुगल लोचन भरि बारी । वचन कहे कछु जनक कुमारी ।
अनुज समेत गहेहु प्रभु चरना । दीनबन्धु प्रनतारति हरना ।
मन क्रम वचन चरन अनुरागी । केहि अपराध नाथ हौं त्यागी ।
अवगुन एक मोर मैं माना । बिछुरत प्रानन कीन्ह पयाना ।
नाथ सो नैनन कर अपराधा । निसरत प्रान करहिं हठि बाधा ।

विरह अगिनि तनु तूल समीरा । स्वास जरइ छनमाहिं शरीरा ।
नयन स्त्रवहिं जलनिजहितलागी । जरैं न पाव देह विरहागी ।
सीता कै आत त्रिपति विशाला । तिनहिं कहे भलिदीनदयाला ।
दो० निमिष निमिष करुनानिधि, जाहि कलप सम बीति ।
वेगि चलिअ प्रभु आनिअ, भुजबल खलदल जीति ॥

जैसे मारीच को सोने का मृग मान लेने से छाया सीता का भगवान राम से वियोग हुआ उसी प्रकार अन्तःकरण में प्रतिबिम्बित चेतन का विम्ब चेतन राम से संसार में सत बुद्धि और सुख बुद्धि करने से वियोग हो गया । जैसे रावण ने छाया सीताको लंका में कैद कर दिया उसी प्रकार मोहरूपी रावण ने चिदाभास जीव को जन्म मरण रूपी लंका में कैद कर दिया । जैसे छाया सीता लंका से अत्यन्त दुखी होकर अहर्निशि भगवान राम के दर्शन के लिए उसी प्रकार व्याकुल रहती थी जैसे मछली जलके वियोग में व्याकुल हो जाती है । उसी प्रकार जो जीव सीता की भाँति सर्वात्मा सच्चिदानन्द भगवान राम की प्राप्ति के लिए व्याकुल रहता है और जन्म मरण रूपी लंका से घबरा जाता है उसको सत्संग रूपी हनूमान से अवश्य भेंट होती है और तत्पश्चात ज्ञान रूपी राम के द्वारा अज्ञान रूपी रावण का नाश होकर जीव जन्म-मरण रूपी लंका से मुक्त हो जाता है परन्तु जो जीव नाली के कीटों की भाँति जन्म मरण में ही राजी रहते हैं और परमानन्द भगवान रामकी प्राप्ति नहीं चाहते हैं वे बराबर ८४ लक्ष योनियों और नरकों में भटकते रहते हैं ।

जैसे छाया सीता को भी यह पता नहीं था कि मेरा असली रूप सच्चिदानन्द राम से उसी प्रकार अभिन्न है जैसे जल से तरंग और सूर्य से प्रकाश अभिन्न है उसी प्रकार चिदाभास जीवको यह पता

नहीं कि मेरा असली रूप कूटस्थ सच्चिदानन्द राम से उसी प्रकार अभिन्न है जैसे महाकाश से घटाकाश अभिन्न होता है। जैसे यदि छाया सीता को पता चल जाता कि मेरा असली रूप विम्ब सच्चिदानंद राम से अभिन्न है तो भगवान राम की तरह वह भी ऊपर ऊपर से यथावत नाटक करती और अन्तर से समता में स्थित रहती। यदि यह मान लिया जाय कि छाया सीता को यह पता था कि मेरा वास्तविकरूप राम के पास ही है केवल छाया को रावण लंका में लाया है तो फिर यह भी मानना चाहिये कि छाया सीता ने भगवान राम की तरह सारा नाटक किया अन्तर से उनको रंचकमात्र भी भगवान राम के वियोग का दुख न था क्योंकि उनके असली रूप का भगवान से वियोग उसी प्रकार नहीं हो सकता जैसे तरंग का जल से वियोग असम्भव है। इसी प्रकार जिस चिदाभास जीव कोसत्संग द्वारा यह अनुभव हो जाता है कि मेरा वास्तविक स्वरूप चिदन्श घटाकाश-वत महाकाश रूपी सच्चिदानन्द राम से अभिन्न है वह शोक मोह से रहित होकर प्रारब्ध पर्यन्त जीवन्मुक्त होकर नाटक करता है और प्रारब्ध क्षय होने पर विदेह मोक्ष को उसी प्रकार प्राप्त हो जाता है जैसे दर्पण के नाश होनेपर प्रतिविम्ब विम्ब स्वरूप से स्थित हो जाता है। भगवान रामने हनूमान जी से इसी प्रकार का प्रश्न किया कि जब सीता शरीर मन वाणी से मेरे ही शरण है तो फिर उसको दुखी नहीं होना चाहिये—

वचनकाय मन ममगति जाही। सपनेहु बूझिअ विपतिकि ताही।

हनूमान जी भी सचेत होकर भगवान रामका समर्थन करने लगे।

कह हनुमंत विपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजन न होई।

हनूमान जी के कहने का तात्पर्य यह है कि जैसे निद्रा पर्यन्त ही स्वप्न की विपत्तियाँ सता सकती हैं उसी प्रकार सर्वात्मा सर्वाधिष्ठान

सच्चिदानन्द भगवान राम की विस्मृति पर्यन्त ही जीव स्वप्नवत संसार की विपत्तियों में फँसा रहता है और जैसे जाग्रत का स्मरण आते ही स्वप्न की विपत्तियों से छुटकारा होता है उसी प्रकार सच्चिदानन्द भगवान राम का स्मरण चिन्तन होते ही सर्वदुःखों की अत्यन्त निवृत्ति हो जाती है।

हनूमान द्वारा सीता जी का कुशल समाचार पाकर भगवान राम अलौकिक सेवा से अति प्रसन्न होकर बोले—

सुनु कपितोहिसमान उपकारी। नहिंकोउ सुरनरमुनि तनुधारी।
प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ नसकत मनमोरा।
सुनुसुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि विचार मनमाहीं।
पुनि पुनिकपिहिचितवसुरत्राता। लोचन नीर पुलक अतिगाता।
दो० सुनि प्रभु वचन विलोकि मुख, गात हरषि हनुमंत।
चरन परेउ प्रेमाकुल, त्राहि त्राहि भगवन्त॥
वार वार प्रभु चहइ उठावा। प्रेम मगन तेहि उठवन भावा।

यज्ञवल्क्य जी भरद्वाज जी से कहते हैं कि—

प्रभुकर पंकज कपिके शीशा। सुमिरि सो दसामगन गौरीशा।
सावधान मन करिपुनि शंकर। लागे कहन कथा अति सुन्दर।
कपि उठाइ प्रभु हृदय लगावा। कर गहि परम निकट बैठावा।
कहु कपि रावन पालितलंका। केहि विधिदहेउदुर्ग अति बंका।
प्रभु प्रसन्न जाना हनुमाना। बोला वचन विगत अभिमाना।
शाखामृग कै बड़ि मनुसाई। साख ते शाखा पर जाई।

नाघि सिंधु हाटकपुर जारा । निसिचरगनबधि विपिनउजारा ।
सो सब तव प्रताप रघुराई । नाथ न कछू मोरि प्रभुताई ।

हनूमान जी के कहने का तात्पर्य यह है कि जैसे कठपूतली का उठना बैठना नाचना दौड़ना सूत्रधार की शक्ति से होता है उसी प्रकार जड़ जङ्गम समस्त प्राणियों की सम्पूर्ण क्रियाएँ सच्चिदानन्द राम की शक्ति द्वारा हो रही हैं। अतः प्राणिमात्र को किसी भी क्रिया का अभिमान नहीं करना चाहिये तथा समस्त कार्य मशीनवत अभिमान रहित होकर करना चाहिए। यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि भगवान अपनी शक्ति से किसी से पाप और किसी से पुण्य क्यों कराता है। इसका समाधान यह है कि जैसे विजली केवल शक्ति सबको देती है कार्य कराती या करती नहीं। विजली की शक्ति पाकर बल्व प्रकाश करने लगता है, पंखा हवा करने लगता है और चक्की आटा पीसने लगती है उसी प्रकार सर्व व्यापक सच्चिदानन्द भगवान राम केवल शक्ति देते हैं करते कराते कुछ नहीं. जड़ जंगम प्राणी भगवान की शक्ति पाकर अपने गुण कर्म संसकारानुसार भिन्न भिन्न क्रियाओं में रत रहते हैं और सूत्रधार अन्तर्यामी राम को भूल जाने के कारण कर्तापन का अभिमान किया करते हैं, जो जन्मरूप कर्मफल से जोड़ने वाला है। अतः हनूमानजी के समान समस्त कर्म कर्तापन के अभिमान से रहित होकर करना चाहिये, यदि अपने को चेतन मानते हो तब भी अभिमान नहीं करना चाहिये क्योंकि चेतन विजली के समान अक्रिय है न कुछ करता है और न कराता है। यदि अपने को जड़ मानते हो तब भी अभिमान नहीं करना चाहिये क्योंकि जड़ भी चेतन की शक्ति उधार लिए विना उसी प्रकार कोई क्रिया नहीं कर सकता जैसे चुम्बक पत्थर की शक्ति को उधार लिए बिना लोहा स्वतः क्रियाशील नहीं हो सकता। अतः सिद्ध हुआ कि धर्मात्मा धर्मका आचरण और पापी

पाप का आचरण भगवान रामकी शक्ति पाकर ही करता है और शक्ति दाता भगवान राम को न पहिचानकर धर्मात्मा धर्माचरण के अभिमान के कारण धर्म के फल को प्राप्त होता है और पापी पापचरण के अभिमान के कारण पाप के फल को प्राप्त होता है। रामचरित मानस कार श्रीतुलसीदास जी भी विनयपत्रिका में यही कहते हैं।

तें निज करम डोरि दृढ़ कीन्हीं। अपने करन गाँठ गहिलीनी।
ताते परवश परेउ अभागे। ता फल गर्भत्रास दुख आगे।

हे उमा ! हनूमान जी ने भगवान से वर मागा—

नाथ भगति अति सुख दायनी। देहु कृपा करि अन पायनी।

अखंड भक्ति मागने का कारण सुनो—

उमा राम सुभाव जेहि जाना। ताहि भजनतजिभाव न आना।

तात्पर्य यह है कि सच्चिदानन्द सर्वात्मा सर्वाधिष्ठान राम का स्वभाव जान लेनेपर शरीर मन इन्द्रियों की सारी चेष्टाएँ भजन रूप हो जायेंगी क्योंकि उसकी दृष्टि में अपने सहित सर्व विश्व सर्वात्मा सच्चिदानन्द राममय उसी प्रकार हो जायेगा जैसे बरफ तरंग फेन बुदबुदों की सारी चेष्टाएँ भी जलमय होती हैं। तरंग फेन बुदबुदों के समान सम्पूर्ण जड़जङ्गम जगत और उसकी समस्त चेष्टाएँ तत्वदर्शी की दृष्टि में सच्चिदानन्द सर्वाधिष्ठान राम रूप हैं। अतः सच्चिदानन्द राम के स्वभाव को जानने वाला सर्वदा सर्वत्र सर्व प्रकार से सतत हरि भजन ही किया करता है क्योंकि उसकी दृष्टि में सच्चिदानन्द राम के अतिरिक्त अन्य कुछ शेष ही नहीं रहा फिर वह राम को छोडकर किसका भजन करे। हे उमा ! भगवान राम और

लक्ष्मण जी वानर भालुओं की असंख्य सेना समेत समुद्र के पास आ गये और समुद्र पार जाने का उपाय सोचने लगे। उधर लंका में रावणकी परम विवेकी स्त्री मन्दोदरीने रावणको समझाते हुए कहा—

कंत करष हरि सन परिहरहू। मोर कहा अति हितहिय धरहू।
सुनहु नाथ सीता बिनु दीन्हें। हित न तुम्हार शंभुअज कीन्हें।

जैसे सीता के त्याग किए बिना रावण की रक्षा ब्रह्मा विष्णु महेश भी नहीं कर सकते थे उसी प्रकार पिंड में भी जब तक मन रूपी रावण मैं और मोर रूप माया का त्याग नहीं करता तबतक इसका कल्याण असम्भव है। मन्दोदरी ने अन्य अवसरों पर भी रावण को परम कल्याणमय वचन सुनाये यथा :—

नाथ बयरु कीजे ताहीं सों। बुधि बलसकिअ जीतिजाही सों।
तुम्हहि रघुपतिहिअंतरकैसा। खलु खद्योत दिनकरहिं जैसा।
जेहि बलिबाँधि सहसभुजमारा। सोइ अवतरेउ हरनमहि भारा।
तासु भजन कीजिअ तहँ भर्ता। जो कर्ता पालक संहर्ता।
सोइ रघुवीर मनत अनुरागी। भजहु नाथ ममता सब त्यागी।
मुनिवर जतनकरहिंजेहि लागी। भूपराज तजि होहिं विरागी।
सोइ कोशलाधीश रघुराया। आयउ करन तोहि पर दाया।
कंत राम विरोध परि हरहू। जानि मनुजजनि हठ मनधरहू।

दो० विश्वरूप रघुवंश मनि, करहु वचन विस्वास।
लोक कल्पना वेद कर, अंग अंग प्रति जासु॥

पद पाताल शीश अजधामा । अपरलोक अँग अँग विश्रामा ।
भृकुटि विलास भयंकर काला । नयन दिवाकरकच घनमाला ।
जासु घ्रान अस्विनी कुमारा । निसि अरु दिवसनिमेष अपारा ।
श्रवन दिसा दस वेद बखानी । मारुत स्वास निगमनिजवानी ।
अधर लोभ जम दसन कराला । माया हास बाहु दिगपाला ।
आनन अनल अंबु पति जीहा । उतपति पालन प्रलय समीहा ।
रोम राजि अष्टादस भारा । अस्थि सैल सरिता नस जारा ।
उदर उदधि अधगो जातना । जगमय प्रभु का बहु कल्पना ।

दो० अहंकार शिव बुद्धि अज, मन शशि चित्त महान ।
मनुज वास सचराचर, रूप राम भगवान ॥
अस विचारि सुन प्रानपति, प्रभुसन वयर विहाय ।
प्रीति करहु रघुवीर पद, मम अहिवात न जाइ ॥

हे उमा इतना सुन्दर उपदेश सुनकर न सुनने की इच्छावाला अश्रद्धालु घमंडी रावण उपदेष्टा के उपदेश को ग्रहण न करके उसके दोषों को कथन करके उसका अपमान करता है यथा :—

विहँसा नारिवचन सुनि काना । अहो मोह महिमा बलवाना ।
नारि सुभाव सत्य सब कहहीं । अवगुन आठ सदा उर रहहीं ।
साहस अनृत चपलता माया । भय अविवेक असौच अदाया ।

ये आठ अवगुण पामर मूढ़ स्त्रियों में रहते हैं मन्दोदरी के समान शुद्ध अन्तःकरणवाली उत्तम स्त्रियों में उसी प्रकार नहीं होते जैसे बालू

में तेल नहीं होता। परन्तु जैसे बन्दर को दर्पण दिखाने पर वह काटने दौड़ता है उसी प्रकार सुनने की इच्छा से रहित अश्रद्धालु निन्दक तामसी मनुष्यों को शास्त्रों का गूढ़ रहस्य सुनाने से वे ग्रहण तो कुछ नहीं करते बल्कि सुनाने वाले के विरोधी और निन्दक बन जाते हैं। हे उमा! माल्यवन्त ने रावण को बड़ी सुन्दर शिक्षा दी।

दो० काल रूप खलवन दहन, गुनागार घन बोध।
शिव विरञ्चि जेहि सेवहिं, तासों कवन विरोध।

विभीषणने रावण को जो शिक्षा दी उसको सुनो :—

जौ कृपालु पूछिहुं मोहि बाता। मति अनुरूप कहउँ हित ताता।
जो आपन चाहै कल्याना। सुजस सुमति शुभगति सुखनाना।
सो परनारि लिलारगोसाईं। तजउ चउथि के चन्द कि नाईं।
चौदह भुवन एकपति होई। भूत द्रोह तिष्ठइ नहिं सोई।
गुन सागर नागर नर जोऊ। अलप लोभ भल कहइन कोउ।

दो० काम क्रोध मद लोभ सब, नाथ नरक के पंथ।
सब परिहरि रघुवीरहिं, भजहु भजहिं जेहि संत॥

तात राम नहिं नर भूपाला। भुवनेश्वर कालहुं कर काला।
ब्रह्म अनामय अज भगवन्ता। व्यापक अजित अनादि अनंता।
गो द्विज धेनु देव हितकारी। कृपासिन्धु मानुष तनु धारी।
जनरंजन भंजन खल ब्राता। वेद धर्म रच्छक सुनु भ्राता।
ताहि वयरु तजि नाइअ माथा। प्रनतारति भंजन रघुनाथा।
देहु नाथ प्रभु कहुँ वैदेही। भजहु राम विनु हेतु सनेही।

सरन गएप्रभु ताहु न त्यागा। विश्वद्रोह कृत अघजेहि लागा।
जासु नाम त्रय तापनसावन। सोइप्रभु प्रगट समुझुजियरावन।
सुमति कुमति सबके उररहहीं। नाथ पुराननिगम अस कहहीं।
जहाँ सुमति तहँ संपति नाना। जहाँकुमतितहँ विपति निधाना।
तव उर कुमति बसी विपरीता। हित अनहितमानहु रिपुप्रीता।

इस प्रकार का सारगर्भित उपदेश सुनकर न सुनने की इच्छावाला अश्रद्धालु रावण क्रोधित होकर बोला—

मम पुरवसितपसिन्हपर प्रीती। सठमिलुजाइ तिनहिं कहु नीती।
अस कहि कीन्हेसिचरनप्रहारा। अनुज गहे पद बारहिं बारा।
तुम्हपितुसरिसभलेहिंमोहिमारा। राम भजे हित नाथ तुम्हारा।
उमा संत कइ इहइ बड़ाई। मंद करत जो करइ भलाई।

हे उमा! रावणकी लात खाकर हर्षित होता हुआ विभीषण भगवान राम के पास चल पड़ा और रास्ते में मनोरथ करता जाता था कि :—

देखिहउँ जाइ चरन जलजाता। अरुन मृदुल सेवक सुखदाता।
जे पद परसि तरी रिषि नारी। दंडक कानन पावन कारी।
जे पद जनकसुता उर लाए। कपट कुरंग संगधर धाए।
हर उर सर सरोजपद जेई। अहो भाग्य मैं देखिहउँ तेई।

दो० जिन्ह पायन्ह के पादुकहिं, भरत रहे मन लाइ।
ते पद आजु बिलोकिहउँ, इन्ह नयनन्हि अबजाइ॥

एहि विधि करत सप्रेम विचारा। आयउसपदिसिंधु एहिपारा।

दूरिहि ते देखे द्वौ भ्राता। नयनानंद दान के दाता।
बहुरि राम छविधाम बिलोकी। रहेउ ठटुकि एकटकपलरोकी।

दो० श्रवन सुजस सुनि आयउँ, प्रभु भंजन भव भीर।
त्राहि त्राहि आरति हरन, सरन सुखद रघुवीर॥

अस कहि करत दण्डवतदेखा। तुरत उठे प्रभु हरषि विसेषा।
दीन वचनसुनि प्रभु मनभावा। भुज विशालगहिहृदय लगावा।
अनुज सहित मिलिढिग बैठारी। बोले वचन भगत भयहारी।
कोटि विप्र बध लागहिं जाहू। आए सरन तजउं नहिं ताहू।
सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्मकोटि अघ नासहि तबहीं।
पापवंत कर सहज सुभाऊ। भजन मोर तेहि भाव न काऊ।
निर्मल मनजनसो मोहि पावा। मोहिं कपट छलछिद्र न भावा।

निर्मल मन और मलिन मन की यही पहिचान है कि निर्मल मनमें भगवत भजन के अतिरिक्त अन्य किसी से राग नहीं होता और मलिन मनमें भजनसे राग नहीं होता। भगवानरामने विभीषण से पूछा—

कहु लंकेश सहित परिवारा। कुशल कुठाहर वास तुम्हारा।
खल मंडली वसहु दिनराती। सखा धरम निबहइ केहि भाँती।

भगवान के इस प्रकार पूछने पर विभीषण ने कहा—

दो० तव लगि कुशल न जीव कहुँ सपनेहुं मन विश्राम।
जब लगि भजत न राम कहुँ, शोक धाम तजि काम।

तब लगि हृदय बसतखल नाना । लोभ मोह मच्छर मद माना ।
जब लगि उर न बसत रघुनाथा । धरे चाप सायक कटि माथा ।
ममता तरुन तमी अंधियारी । रागद्वेष उलूक सुखकारी ।
तब लगि बसत जीव मनमाहीं । जब लगि प्रभुप्रताप रविनाहीं ।
तुम्ह कृपाल जापर अनुकूला । ताहि न व्याप त्रिविध भवसूला ।

विभीषण के भक्ति पूर्ण वचन सुनकर भगवान राम कहने लगे—

सुनहु सखा निज कहउँ सुभाऊ । जान भुसुंडि शंभु गिरजाऊ ।
जौं नर होइ चराचर द्रोही । आवै सभय सरन तकि मोही ।
तजि मद मोह कपट छलनाना । करउँ सद्य तेहि साधु समाना ।
जननी जनक बंधु सुत दारा । तन धन भवन सुहृद परिवारा ।
सब कै ममता ताग बटोरी । मम पद मनहिं बाँध बरि डोरी ।
समदरसी इच्छा कछु नाहीं । हरष शोक भय नहिं मनमाहीं ।
अस सज्जन मम उर बस कैसे । लोभी हृदय बसइ धनु जैसे ।
तुम्ह सारिखे संत प्रिय मोरे । धरउं देह नहिं आन निहोरे ।
जदपि सखा तव इच्छा नाहीं । मोर दरस अमोघ जगमाहीं ।
अस कहि राम तिलक तेहि सारा । सुमन वृष्टि नभ भई अपारा ।

याज्ञवल्क्य जी भरद्वाज से कहते हैं कि :—

दो० जो संपति शिव रावनहिं, दीन्हि दिए दस माथ ।
सोइ संपदा विभीषनहिं, सकुचि दीन्हि रघुनाथ ॥

विभीषणको लंकाका राज्य देनेमें भगवान रामको इस कारण संकोच हो रहा है कि भगवान की दृष्टि में लंका का राज्य उसी प्रकार तुच्छ है जैसे जाग्रत पुरुष की दृष्टि में स्वप्न का राज्य तुच्छ होता है। अतः भक्त विभीषणको जली हुई लंकाका राज्य देकर यह समझकर संकोच कर रहे हैं कि इसको हम कुछ नहीं दे रहे हैं। पिंड में जीवनमुक्ति का आनन्द भी तत्वदर्शी की दृष्टि में तुच्छ हो जाता है। जैसे किसी पुरुष को वमन भेंट करने में संकोच होगा उसी प्रकार भगवान राम को विभीषण को लंका देने में संकोच हो रहा है क्योंकि विभीषण के समान भगवद्भक्त संसार को वमन वत समझते हैं यथा :—

रमा विलास राम अनुरागी। तजत वमन इव नर बड़ भागी।

हे उमा !

प्रभु सर्वज्ञ सर्व उर वासी। सर्व रूप सब रहित उदासी।
अस प्रभु छाँडिभजहिं जेआना। ते नर पशु बिन पूँछ विषाना।

तीन दिन तक भगवान राम ने समुद्र की विनय की परन्तु उसके ध्यान न देने पर भगवान राम ने लक्ष्मण जी से कहा :—

सठसन विनयकुटिल सनप्रीती। सहज कृपन सन सुन्दर नीती।
ममता रत सन ज्ञान कहानी। अति लोभी सन विरति बखानी।
क्रोधिहि सम कामिहि हरि कथा। ऊसर बीज वए फल जथा।
अस कहि रघुपति चाप चढ़ावा। यह मत लछिमनके मनभावा।

तब डर कर विप्ररूप धारण करके समुद्र भगवान राम से निवेदन करने लगा :—

सभय सिन्धु गहिपद प्रभु केरे। छमहु नाथ सब अवगुन मेरे।
गगन समीर अनल जलधरनी। इन्हकइ नाथ सहज जड़ करनी।
तव प्रेरित माया उपजाए। सृष्टि हेतु सब ग्रंथनि गाए।

तात्पर्य यह है कि आपसे भिन्न सम्पूर्ण पंचभौतिक जगत आपकी शक्ति माया का कार्य है और आप माया तथा माया के कार्य के अधिष्ठान हैं। समुद्र ने भगवान राम को प्रार्थना से प्रसन्न करके पुल बाँधने की सम्मति दी।

नल नील को ऐसा वर प्राप्त था कि उनके हाथ से फेंके हुए पत्थर पानी पर तैरते रहते थे डूबते नहीं थे। अतः नल नील को सब बन्दर और भालु पर्वत ला ला कर देने लगे और नल नील उनको समुद्र में फेंकने लगे जो डूबते नहीं थे। हनूमान जी एक पत्थर में रा और दूसरे पत्थर में म लिखकर जोड़ते जाते थे। इस प्रकार शीघ्रता से पुल तैयार हो गया। सेतु बंध जाने पर भगवान रामनेवहाँ रामेश्वर तीर्थ की स्थापना की और कहने लगे—

लिंग थापि विधिवत करिपूजा। सिव समानप्रिय मोहि न दूजा।
शिव द्रोही मम भगत कहावा। सो नर सपनेंउँ मोहि न पावा।
शंकर विमुख भगति चह मोरी। सो नारकी मूढ़ मति थोरी।

दो० शंकर प्रिय मम द्रोही, शिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलप भरि, घोर नरक महँ बास॥

तात्पर्य यह है कि भगवान राम का पारमार्थरूप चतुर्थ पाद ही शिव स्वरूप है। यथा :—

जगदात्मा महेश पुरारी। जगत जनक सब के हितकारी।

नान्तः प्रज्ञं न वहिष्प्रज्ञं नोभयतः प्रज्ञं न प्रज्ञान घनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम् । अदृष्ट मव्यवहायमग्राह्यमलक्षण मचिन्त्य मव्य-पदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः ॥

(माण्डूक्य उप०)

जो मनुष्य मेरे चतुर्थपाद परमार्थ स्वरूप ब्रह्म से प्रेम करना चाहता है और मेरे तीन पाद विराट हिरण्यगर्भ ईश्वर को मेरे चतुर्थ पाद से भिन्न जानकर इन तीनों से द्वेष करता है अथवा जो मेरे तीनों पादों से प्रेम रखता है और मेरे चतुर्थपाद निद्वैत परमानन्द घन शिव स्वरूप से द्वेष करता है वे दोनों जन्म मरणरूप संसार से पार नहीं हो सकते।

जैसे जो स्वर्ण से प्रेम करता है और भूषणों से द्वेष करता है वह भी मूर्ख है और जो भूषणों से प्रेम करता है और स्वर्ण से द्वेष करता है वह भी मूर्ख है। अथवा जैसे धान से प्रेम करे और चावल से घृणा करे तो मूर्खता है और चावल से प्रेम करे और धान से घृणा करे यह भी मूर्खता है इसी प्रकार जो भगवान राम से प्रेम करे और शिव से घृणा करे अथवा शिव से प्रेम करे और राम से घृणा करे तो वह दोनों प्रकार से मूर्ख है क्योंकि भगवान राम के तीन पाद विश्व तैजस प्राज्ञ भूषण और धान वत हैं और भगवान राम का चतुर्थपाद जिसको ब्रह्म, तुरीय आत्मा अथवा शिव कहकर वेदों ने वर्णन किया है स्वर्ण और चावल के समान है। जैसे धान छिलका सहित चावल को कहते हैं और चावल छिलका रहित धान को कहते हैं उसी प्रकार स्वरूप की विस्मृतिरूप अग्रहण या निद्रा और अन्यथा ग्रहण रूप स्वप्न से

तीन पाद विश्व तैजस प्राज्ञ युक्त हैं अर्थात विश्व और तैजस अग्रहण रूप निद्रा और अन्यथा ग्रहण रूप स्वप्न से युक्त हैं और प्राज्ञ केवल अग्रहण से युक्त है। परन्तु राम का चतुर्थपाद तुरीय जिसको शिव कहते हैं वह अग्रहण रूप निद्रा और अन्यथा ग्रहण रूप स्वप्न दोनों से रहित है।

जैसे सूर्य के कारण वृक्ष छाया रूप से प्रतीत होता है उसी प्रकार अग्रहणरूप अविद्या के कारण सच्चिदानन्द सर्वात्मा राम का परमार्थ स्वरुप चतुर्थपाद तुरीय प्रपंच शून्य शिव ही विश्व तैजस प्राज्ञ रूपसे छाया की भाँति प्रतीत हो रहा है। भगवान राम के विश्व तैजस प्राज्ञ तीन पादों में अग्रहण रूप अविद्या अनादि भावरूप है, और अन्यथा ग्रहणरूप स्वप्न का उपादान होनेसे इसी को प्रकृति भी कहते हैं। दुर्घट को सम्पादन करने से इसीको माया भी कहते हैं। परन्तु जैसे रज्जु में सर्प विचार करनेपर सिद्ध नहीं होता उसी प्रकार विचार करनेपर अग्रहण रूप अविद्या तुच्छ हो जाती है। रज्जुसर्पवत अग्रहण रूप अविद्याका परिणाम और चेतनका विवर्त होने से अन्यथा ग्रहणरूप जाग्रत जगत को भी स्वप्न ही समझना चाहिए। यदि साकार जगत की कारण अग्रहण रूप अविद्या को निराकार माना जाये तो निराकार अविद्या से साकार जगत की उत्पत्ति उसी प्रकार असम्भव है जैसे निराकार बीज से साकार वृक्ष की उत्पत्ति नहीं हो सकती यदि अविद्याको साकार मान लिया जाये तोवह किसी देशविशेष में स्थित होगी। परन्तु देश अविद्याकृत होनेसे उत्पन्न होने के पूर्व नहीं है। अतः अग्रहणरूप अविद्या देशका अभाव होने से साकार नहीं हो सकती।

यदि थोड़ी देर के लिए अविद्याको निराकार मान लिया जाये तो यह प्रश्न होता है कि अविद्या सत है या असत जड़ है या चेतन।

यदि अविद्या को सत और जड़ मान लिया जाये तो ज्ञान के द्वारा अविद्या की निवृत्ति असम्भव है क्योंकि ज्ञान से वस्तु का केवल प्रकाश होता है वस्तुका नाश नहीं होता। अतः सत्य होनेपर ब्रह्म को आवरण करने वाली अविद्या शेष रहेगी और मोक्ष न होगा। इसके अतिरिक्त चतुर्थ पाद ब्रह्म अद्वितीय असंग सिद्ध न होगा। अविद्या को सत जड़ मानने पर अविद्या का ब्रह्म से विजातीय भेद होगा और चेतन मानने से सजातीय भेद होगा जो वेद विरुद्ध है क्योंकि वेद में चतुर्थ पाद शिव रूप तुरीय ब्रह्म को सजातीय विजातीय स्वगत भेद से रहित अद्वितीय तत्व बतलाया गया है। अस्तु ब्रह्म से भिन्न अविद्या वन्ध्या के पुत्रवत शब्द मात्र अर्थशून्य है। जैसे जाग्रत अवस्था में वन्ध्या का पुत्र कथन मात्र अर्थशून्य असत है और जब स्वप्न में वह वन्ध्या निद्राजन्य पुत्रको अपनी गोद में प्रत्यक्ष देखती है तब वह स्वप्न में वन्ध्यापुत्र अनिर्वचनीय है इसी प्रकार विश्व तैजस प्राज्ञ तीन पादों में अग्रहण रूप अविद्या अनिर्वचनीय स्वप्न के वन्ध्या पुत्रवत भाव रूप है और भगवान राम के चतुर्थपाद निर्द्वैत परमानन्द घन शिव रूप तुरीय ब्रह्म में जाग्रत अवस्था के बंध्या पुत्रवत असत कथन मात्र है। सत्य ज्ञान अनन्त अद्वतीय सहज निर्विकल्प ब्रह्म स्वयं अपने ज्ञान का उसी प्रकार विषय नहीं है जैसे नेत्र नेत्र का विषय नहीं है। ब्रह्म स्वतः ज्ञान का विषय न होने से अग्रहण रूप अविद्या कथन मात्र सिद्ध भी हो जाती है परन्तु वन्ध्यापुत्रवत कथन मात्र होने पर भी अर्थशून्य है। ब्रह्म स्वतः ज्ञान का विषय होने पर ज्ञाता ज्ञेय और दृष्टा दृश्य होगा जो असम्भव है क्योंकि कर्ता से कर्म प्रथक होता है. कर्ता अपनी क्रिया का कर्म नहीं हो सकता तथा अपना प्रकाश अपने से होने से आत्माश्रय दोष भी होगा। अतः स्वरूपका अग्रहण कथन मात्र सिद्ध

हो जाता है परन्तु है बिना काष्ठ की लकड़ीवत निरात्मक।

यद्यपि अग्रहण रूप अविद्या परमार्थतः तुच्छ है परन्तु यही रज्जु में सर्प, सीप में चाँदी, सूर्य किरणों में मृगजल ठूँठ में पुरुष, आकाश में नीलमा, साक्षी में स्वप्न तथा भगवान राम के चतुर्थपाद शिव को अवस्थाओं के सहित विश्व तैजस प्राज्ञ रूप से अनादिकाल से विवर्त रूप से दिखला रही है।

अब यह प्रश्न हो सकता है कि वन्ध्या पुत्र वत कथनमात्र अर्थ-शून्य अभाव रूप अविद्या से भाव रूप जगत की उत्पत्ति कैसे हो सकती है। इसका समाधान यह है कि जैसे परमार्थ दृष्टि से जगत का कारण अविद्या निरात्मक तुच्छ अर्थ शून्य है. उसी प्रकार जगत भी तुच्छ है और जैसे व्यावहारिक दृष्टि से विश्व तैजस प्राज्ञ में अविद्या भाव रूप ज्ञान निवर्त्य है उसी प्रकार जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति स्थूल सूक्ष्म कारण प्रपंच भी व्यावहारिक दृष्टि से भाव रूप और ज्ञान निवर्त्य हैं। जैसे स्वप्न में खड़े होकर स्वप्न का सूर्य और उसका कार्य प्रकाश भाव रूप सदसद्विलक्षण कहना चाहिए और जाग्रत में खड़े होकर स्वप्न का सूर्य और उसका कार्य प्रकाश अभाव रूप तुच्छ है उसी प्रकार व्यावहारिक दृष्टि से विश्व तैजस प्राज्ञ तीन पादों में जाग्रत स्वप्न का बीज आग्रहण रूप अविद्या स्वप्न के सूर्य की भांति भाव रूप सदसद्विलक्षण है और उसका कार्य भी स्वप्न के सूर्य के प्रकाशवत भाव रूप है।

परन्तु परमार्थ दृष्टि से भगवान राम के चतुर्थपाद परमार्थ स्वरूप निर्द्वैत परमानन्द घन शिव रूप तुरीय में अग्रहण रूप अविद्या वन्ध्या पुत्र वत तुच्छ है और उसके कार्य जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति का भी अत्यन्ता-भाव है। अतः जैसे स्वप्न के कल्पित सूर्य से कल्पित प्रकाश उत्पन्न हो

सकता है उसी प्रकार कल्पित अविद्या से कल्पित प्रपंच उत्पन्न हो सकता है।

अतः भगवान राम के चतुर्थपाद शिव रूप और तीन पाद विराट हिरण्य गर्भ ईश्वर में भेदबुद्धि कदापि नहीं करना चाहिए क्योंकि भेद बुद्धि वाला बरावर जन्म मृत्यु को प्राप्त होता रहता है। हे उमा! भगवान राम पुल द्वारा सेना समेत समुद्र पार हो गए और सुवेल पर्वत पर ठहर गए। रात्रि के समय चन्द्रमा को देखकर भगवान राम ने सबसे पूछा :—

कह प्रभु ससिमहुँ मेचकताई। कहहु काह निज-निजमतिभाई।

सब ने चन्द्रमा में कालापनके विषयमें अपनी अपनी भावनानुसार उत्तर दिए।

कह सुग्रीव सुनहु रघुराई। ससि महुं प्रगट भूमि कै झाई।
मारेउ राहु शशिहिं कह कोई। उर महँ परी स्यामता सोई।

कोउ कहजबविधिरति मुखकीन्हा। सार भाग ससिकर हरलीन्हा।
छिद्र सो प्रगट इन्दु उरमाहीं। तेहि मग देखिअ नभपरिछाहीं।
प्रभु कह गरल बंधु शशिकेरा। अति प्रियनिजउरदीन्ह बसेरा।
विष संयुत कर निकर पसारी। जारत विरह वंत नर नारी।

दो० कह हनुमंत सुनहु प्रभु, शशि तुम्हार प्रिय दास।
तव मूरति विधु उर बसति, सोइ श्यामता अभास॥

तात्पर्य यह है कि सुग्रीव पृथ्वी के राजा अभी हाल में बनाए गये थे इस कारण उनकी भावना में चन्द्रमा में कालापन पृथ्वी की छाया

प्रतीत हुई। विभीषण अभी रावण के चरण का प्रहार सहकर आरहे हैं इस कारण उनकी भावना में ऐसा निश्चय हुआ कि राहु के मारने के कारण चन्द्रमा के हृदय में काला धब्बा पड़ गया है। अंगद की भावना में यह निश्चय हुआ कि ब्रह्मा ने कामदेव की स्त्री रति का मुख चन्द्रमा का सार भाग काट कर बनाया है और उसी छिद्र में आकाश की छाया पड़ रही है वही चन्द्रमा के हृदय में श्यामता है। अंगद के अन्दर ऐसी भावना इस कारण हुई कि ब्रह्मा ने जैसे चन्द्रमा का सार भाग काटकर रति का मुख बना दिया उसी प्रकार भगवान राम ने भी अंगद के राज्य को सुग्रीव के सिपुर्द कर दिया।

भगवान राम को सीता के वियोग में चन्‌मा का प्रकाश दुखदाई प्रतीत होना चाहिये इस कारण 'जस काछिअ तस चाहिअ नाचा।' न्याय के अनुसार भगवान राम ने भी वैसा ही उत्तर दिया कि विष चन्द्रमा का अत्यन्त प्रिय भाई है इस कारण उसको अपने हृदय में स्थान दिया है। वही काला-काला दिखाई पड़ रहा है। उस विष से मिली हुई होने के कारण चन्द्रमा की शीतल किरणें भी विषैली और उष्ण होकर वियोगी नर नारियों को जला रही हैं।

शुद्ध अन्तःकरण वाले हनूमान जीने उत्तर दिया कि आप के भक्त चन्द्रमा के हृदय में आपकी श्याम मूर्ति निवास करती है। वही श्याम वर्ण प्रतीत हो रही है। अर्थात चन्द्र में श्यामता आपसे अतिरिक्त कुछ नहीं।

तात्पर्य यह है कि चन्द्रमा भगवान राम का भक्त है और जैसे चन्द्रमा में प्रतीत होने वाली श्यामता भगवत स्वरूप ही है भगवान राम से भिन्न कुछ नहीं उसी प्रकार समष्ठि मन में रज्जुसर्पवत प्रतीत होनेवाली श्यामता स्थानीय संसार भगवत स्वरूप ही है। सर्वाधिष्ठान

सर्वात्मा सच्चिदानन्द रामसे भिन्न कुछ नहीं। चन्द्रमा रूप मन भी भगवान राम से भिन्न कुछ नहीं क्योंकि—

देखिय सुनिय गुनिय मनमाहीं। मोह मूल परमारथ नाहीं।

हे उमा! तत्पश्चात् अंगद को दूत बनाकर रावण के पास भेजा। रावण भेद नीति से अंगद को अपने पक्ष में मिलाने के लिए मीठे शब्दों में वालिकी कुशल पूछने लगा—

अब कहु कुशलवालिकहँ अहई। विहंसि वचनतबअंगद कहई।
दिन दस गए बालि पहिंजाई। बूझेउ कुशल सखा उरलाई।
राम विरोध कुशल जसि होई। सो सब तोहि सुनाइहि सोई।
सुन सठ भेद होइ मन ताके। श्रीरघुवीर हृदय नहिं जाके।

रावण अपने प्रताप का वर्णन करते हुए अंगद से कहने लगा कि तू एक साधारण मनुष्य की प्रशंसा कर रहा है और मेरी निन्दा करता है यह तेरी बहुत बड़ी मूर्खता है। इसके उत्तर में अंगद ने रावण को डाटा कि—

सिव विरञ्चि सुर मुनि समुदाई। चाहत जासुचरन सेवकाई।
राम मनुज कस रे सठ बंगा। धन्वी काम नदी पुनि गंगा।
पशु सुरधेनु कल्पतरु रूखा। अन्नदान अरु रस पीयूषा।
वैनतेय खग अहि सहसानन। चिंता मनिपुनि उपलदसानन।
सुनु मति मंद लोक वैकुण्ठा। लाभकि रघुपतिभगति अकुण्ठा।

दो० सेन सहित तव मान मथि, बन उजारि पुर जारि।
कसरे सठ हनुमान कपि, गयउ जो तव सुतमारि॥

इसी प्रकार संत सूरदास से प्रश्न किया गया कि सबसे बड़ा कवि और सबसे श्रेष्ठ कविता किसकी है। उसके उत्तर में सूरदासजी ने कहा कि सबसे बड़ा कवि मैं हूँ और सबसे श्रेष्ठ कविता मेरी है। तब प्रश्नकर्ता ने पूछा कि क्या तुलसीदास जी तुम्हारी दृष्टि में सबसे बड़े कवि नहीं हैं और उनकी कविता सबसे श्रेष्ठ नहीं है। इस प्रश्न के उत्तर में महात्मा सूरदास जी ने कहा कि तुलसीदास जी महाराज की गणना कवियों में करके उनकी निन्दा क्यों कर रहे हो वह कवि नहीं बल्कि महर्षियों में शिरोमणि हैं और उनकी रचना कविता नहीं वेदमंत्र हैं। उसी प्रकार अंगद ने रावण को समझाया कि भगवान राम मनुष्य नहीं परब्रह्म जगदात्मा हैं यथा—

जगदात्मा प्रानपति रामा। तासु विमुख किमिलह विश्रामा।

तात्पर्य यह है कि जैसे स्वप्न नरों की आत्मा स्वप्नसाक्षी है तथा तरंगों की आत्मा जल है और सूर्य के प्रतिबिम्बों की आत्मा बिम्ब सूर्य है उसी प्रकार स्वप्नवत सम्पूर्ण जगत की आत्मा जगतसाक्षी स्वयं प्रकाश सर्वाधिष्ठान सच्चिदानन्द राम हैं। उन सर्वाधिष्ठान सच्चिदानन्द राम के अज्ञान से ही स्वप्नवत यह संसार भ्रम मात्र दिखाई देता है और ज्ञान से उसी प्रकार इसका बाध हो जाता है जैसे जागनेसे स्वप्न भ्रमका बाध हो जाता है।

उमाराम की भृकुटि बिलासा। होइ विश्वपुनि पावइ नासा।
जेहि जाने जग जाइ हिराई। जागे जथा स्वप्न भ्रम जाई।

हे उमा! रावण का अभिमान नाश करने के लिए अंगद ने उसकी सभा में अपना पैर रोप दिया।

समुझि रामप्रताप कपिकोपा। सभा माझ पन करि पदरोपा।
जौं मम चरन सकसि सठटारी। फिरहिं राम सीता मैं हारी।
पुनि उठि झपटहिं सुरआराती। टरइन कीस चहन एहिं भाँती
पुरुष कुजोगी जिमि उरगाई ' मोह विटपनहिं सकहि उपारी।
कपि वल देखिसकल हियहारे। उठा आप कपि के परचारे।
गहत चरन कह बालि कुमारा। मम पद गहे न तोर उवारा।
गहि सन रामचरन सठ जाई। सुनत फिरामन अति सकुचाई।

अंगद की गर्जन से रावण के वहुत से मुकुट पृथ्वीपर गिर पड़े जिनमें से शाम. दाम दण्ड, भेद के प्रतीक चार मुकुट भगवान राम के पास अंगद ने फेक दिये और वहाँ से चलकर भगवान राम के पास आ गये। परन्तु इतना वड़ा भगवत कार्य करने पर भी हनूमान जी की भाँति इनके हृदयमें अभिमान रंचक मात्र भी न था क्योंकि सूत्र-धार भगवान राम को कठपुतली अपने को समझते थे।

हे उमा! तत्पश्चात् राम और रावण की सेनाओं में उसी प्रकार घमासान युद्ध होने लगा जैसे पिंड में दैवी आसुरी वृत्तियों में युद्ध हुआ करता है। रावण सुन मेघनाद ने युद्ध में वड़ी कठिन माया दिखलाई और अन्त में मेघनाद ने वीर घातिनी सांगी छोड़कर लक्ष्मण को मूर्छित कर दिया।

सुन गिरजा क्रोधानल जासू। जारइ भुवम चारि दस आँसू।
सक संग्राम जीति को ताही। सेवहिं सुरनर अग जग जाहीं।
व्यापक ब्रह्म अजितभुवनेश्वर। लछिमन कहाबूझ करुनाकर।
तव लगि लै आयउ हनुमाना। अनुज देखिप्रभुअतिदुखमाना।

सुत वित नारि भवनपरिवारा । होहिं जाहिं जगवारहि वारा ।
अस विचारि जियजागहुताता । मिलइ नजगत सहोदर भ्राता ।
जथा पंख विनुखगअति दीना । मनिविनुफनिकरिवरकरहीना ।
अस मम जिवन बंधुविनु तोही । जौं जड़ दैव जिआवै मोही ।
जैहउँ अवध कवन मुहु लाई । नारि हेतु प्रिय भाइ गँवाई ।
निज जननी के एक कुमारा । तात तासु तुम प्रान अधारा ।
बहु विधिसोचतसोचविमोचन । स्रवतसलिलराजिवदललोचन ।
उमा एक अखंड रघुराई । नरगति भगत कृपालु देखाई ।

लंका के सुखेन वैद्य ने बतलाया कि लक्ष्मण की मुर्छा दूर होने की एकमात्र औषधि संजीवनी जड़ी है। अतः हनूमान जी, संजीवनी जड़ी लेने के लिए पर्वत की ओर चल पड़े। हे उमा हनूमान के रास्ते में ही कालनेमि राक्षस ने उनको रोकने के लिए अपनी माया से एक सुन्दर बाग की रचना कर दी जिसमें बहुत से मंदिर और तालाब भी रच दिए। जब राक्षस अपनी माया से विचित्र रचना कर सकते हैं तब सच्चिदानन्द राम अपनी माया से स्वप्नवत विचित्र संसार की रचना करके जीवों को मोहित कर दें तो क्या आश्चर्य है।

हे उमा! कालनेमि की माया से रचे हुए बागको देखकर हनुमान मोहित हो गये और कालनेमि को संत के वेष में देखकर उसको संत ही मान लिया परन्तु मकरी द्वारा कालनेमि को मायावी जानकर मार डाला और पहाड़ पर पहुँच कर संजीवनी न पहिचानने के कारण उस पहाड़ को उखाड़ कर आकाश मार्ग से लेकर चल दिये।

जब वह अयोध्याके ऊपर से जा रहे थे तो भरतजी ने राक्षस समझकर वाण मार दिया और हनूमान जी नीचे आ गिरे परन्तु पहिचानने पर और लंका का सारा समाचार जानकर भरत को बहुत शोक हुआ।

वहाँ से बड़ी शीघ्रता से हनूमान जी प्रातःकाल होने के पहले ही भगवान राम के पास आ गए और संजीवनी जड़ी द्वारा लक्ष्मण जी की मुर्छा दूर हो गई। प्रातःकाल होते ही फिर युद्ध छिड़ गया और कुम्भकरण ने महान भयंकर रूप धारण करके घोर युद्ध किया। अन्त में भगवान के वाण से मारे जाने के कारण मोक्ष को उसी प्रकार प्राप्त हुआ जैसे नदी समुद्रमें समाकर मुक्त हो जाती है। यथा—

तासु तेज प्रभु वदन समाना। सुर मुनि सवहिंअचंभा माना।

तत्पश्चात् दूसरे दिन मेघनाद की नागपाश में भगवान राम बँध गए।

व्याल पास वस भए खरारी। स्ववस अनंत एक अविकारी।

नट इव कपट चरित करनाना। सदा स्वतंत्र एक भगवाना।

गरुड़ ने आकर व्यालपाश से भगवान् राम को छुड़ाया और उनके हृदय में मोह का अंकुर हे उमा! तुम्हारी भाँति उत्पन्न हो गया कि इनको ब्रह्म का अवतार कैसे माना जाये जब यह नाग पाश में बँध गये और मेरे छुड़ाने से मुक्त हो सके।

अन्त में जाग्रत जगत के आधार शेषनाग के अवतार लक्ष्मण जी ने मेघनाद को वाण द्वारा समाप्त कर दिया। मेघनाद के मरने पर देवता लोग फूलों की वर्षा करने लगे। मंदोदरी को मेघनाद के मरने पर महान शोक हुआ तब रावणने उसको उपदेश दिया।

दो० तब दशकंठ विविध विधि, समुझाई सब नारि।
नश्वर रूप प्रपंच सब, देखहु हृदय विचारि॥

शाप वश रावण का ऊपरी व्यवहार घोर राक्षसी था परन्तु अन्दर से भगवान राममें ही निष्ठा रखता था और संसार को नश्वर जानता था। मेघनाद के मारे जाने पर रावण युद्ध में आ डटा और विचित्र माया दिखलाने लगा। कभी अनेक राम और लक्ष्मण बनकर भगवान राम की सेना के सन्मुख सब को राम लक्ष्मण के रूपों में दिखाई पड़ने लगता है और कभी अनेक रावण बनकर सब का संहार करने लगता है तथा कभी हनूमान के अनेकों रूप धारण करके सबको कष्ट देने लगता है और उस माया को लक्ष्मण भी सत्य इव मान रहे हैं। यथा—

प्रगटेसि विपुल हनुमान, धाए गहे पाषान।
तिन्ह राम घेरे जाइ, चहुँदिशि बरूथ बनाइ॥

अंतरधान भयउ छन एका। पुनि प्रगटेउ खल रूप अनेका।
चहुं दिशि धावहिंकोटिन्हरावन। गर्जहिं घोर कठोर भयावन।

जैसे रावण माया से अनेक राम, अनेक लक्ष्मण और अनेक हनूमान हो गया और रावण भी ज्यों का त्यों बना रहा और फिर अनेक रावण भी बन गया तब भी अपने असली रूप का त्याग नहीं किया उसी प्रकार सर्वाधिष्ठान सच्चिदानन्दराम अनन्त कोटि ब्रह्माण्डोंके रूपमें प्रतीत होने लगते हैं परन्तु तब भी अखंड एक रस रहते हैं। जैसे माया रचने के पहले एक रावण था और माया निवृत्त होने पर एक रावण शेष रह गया उसी प्रकार सृष्टि के पहले एक अद्वितीय सच्चिदानन्द ब्रह्म राम ही थे और सृष्टि के अन्त होने पर भी सच्चिदानन्द ब्रह्म राम ही शेष रहते हैं। जैसे माया रचित अनेक रावण व हनूमानादि का रावण ही निमित्त और उपादान कारण है उसी प्रकार सम्पूर्ण जड़ जङ्गम जगत के निमित्त और उपादान कारण सच्चिदानन्द ब्रह्म राम हैं। जैसे अनेक हनूमानादि के रूप में रावण ही था उसी प्रकार जड़ चेतन

जगतरूप में सच्चिदानन्द राम ही हैं। जैसे अनेक रूप धारण करनेपर भी रावण ज्यों का त्यों एक ही रहा उसी प्रकार अनन्त कोटि ब्रह्मांड रूप धारण करने पर सर्वात्मा सर्वाधिष्ठान सच्चिदानन्द राम ज्यों के त्यों निर्गुण निराकार एक रस अद्वैत रूपसे स्थित रहते हैं। जैसे रावण की माया लक्ष्मण ने भी सच्ची मानी उसी प्रकार बड़े बड़े पंडित भी सच्चिदानन्द भगवान राम की संसार माया को मिथ्या होनेपर भी सत्य मानते हैं। जैसे अनेक हनूमानों में प्रत्येक यह अभिमान कर सकता है कि मैं रावण हूँ उसी प्रकार प्रत्येक प्राणी यह अभिमान कर सकता है कि मैं सच्चिदानन्द राम हूँ क्योंकि सबका आदि और अन्त का स्वरूप वही है जैसे सर्व तरंगों का आदि और अन्त का स्वरूप जल है।

जैसे मायावी हनूमान यह नहीं जानते थे कि हम सब का वास्तविक स्वरूप रावण है, रावण से भिन्न हम सब कुछ नहीं उसी प्रकार समस्त जीवों को भी यह पता नहीं कि हम सबका वास्तविक स्वरूप सर्वाधिष्ठान सर्वव्यापक सच्चिदानन्द राम है और सच्चिदानन्द राम से भिन्न हम सबकुछ नहीं। इस प्रकार अज्ञान ही मोह या अविद्या कहलाता है जो सर्वदुखों का मूल है।

हे उमा ! तत्पश्चात रावण भगवान राम के सामने आकर बहुत दुर्वचन कहने लगा। तब भगवान् राम उसको समझाते हुए बोले—

जनि जल्पनाकरि सुजस नासहि, नीति सुनहि करहि क्षमा।
संसार महँ पुरुष त्रिविध, पाटल रसाल पनस समा॥
एक सुमन प्रद एक सुमन फल, एक फलहिं केवल लागहीं।
एक कहहिं कहहिं करहिं अपर, एक करहिं कहत न बागही॥

रथारूढ़ रावण के सन्मुख आनेपर भगवान् राम को रथ रहित देख-कर विभीषण को बहुत घबराहट हुई और वह भगवान से पूछने लगा और भगवान ने उसका समाधान किया, उस प्रसंग को सुनो—

रावन रथी विरथ रघुबीरा। देखि विभीषण भयउ अधीरा।
अधिक प्रीति मन भा सन्देहा। बंदि चरन कह सहित सनेहा।
नाथ न रथनहिंतनपद त्राना। केहि विधिजितब वीरबलवाना।
सुनहु सखाकह कृपानिधाना। जेहि जयहोइसो स्यंदन आना।
सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्यशील दृढ़ ध्वजा पताका।
बल विवेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे।
ईस भजन सारथी सुजाना। बिरति चर्म संतोष कृपाना।
दान परसु बुधि शक्ति प्रचंडा। वर विज्ञाग कठिन को दंडा।
अमल अचल मनत्रोनसमाना। सम यमनियम सिलीमुखनाना।
कवच अभेद विप्र गुरु पूजा। एहिसम विजय उपाय न दूजा।
सखा धर्ममय अस रथ जाके। जीतन कहँ नकतहुँ रिपु ताके।

दो० महा अजय संसार रिपु, जीति सकइ सो वीर।
जाके असरथ होइ दृढ़, सुनहु सखा मति धीर॥

हे उमा! भगवान राम से विभीषण पूछ रहा है कि हे प्रभो! महान बलवान रावण से आप किस उपाय से विजय प्राप्त कर सकते हैं जब कि आप के पास सवारी के लिए रथ तो दूर रहा पैर में जूते भी नहीं हैं। ऐसा प्रश्न उत्पन्न होने का कारण यह है कि भगवान राम में सच्चिदानन्द ब्रह्म भावना उनके समीप रहते रहते

नष्ट हो गयी और मनुष्य भावना जाग्रत हो गई। भगवत भावना के अभाव में ही अन्तःकरण में निर्बलता आ जाती है और भय शोक मोह का सदन बन जाता है। भगवान राम की शरण में जब विभीषण आया था तब भगवान राम के प्रति क्या भावना थी सुनो—

**तात राम नहिं नर भूपाला। भुवनेश्वर कालहु कर काला।**

परन्तु जैसे रस्सी को भूलते ही रज्जुसर्प भय देने लगता है उसी प्रकार भगवान राम के ब्रह्म रूप का विस्मरण करते ही रावण का भय उत्पन्न हो गया।

अन्तःकरण पूर्ण रूप से शुद्ध न होने से मनुष्य की श्रद्धा घटती बढ़ती रहती है। जब तक विभीषण भगवान राम से दूर रहा तब तक उनको परमेश्वर मानता रहा और जब समीप रहने लगा तब मनुष्य मानने लगा। हनूमान जी के समान विरले ही भक्त होते हैं जिनकी श्रद्धा सदा एक रस रहती है। भगवान राम ने विभीषण को मित्र कहकर सम्बोधन किया सुत कहकर सम्बोधन नहीं किया जैसे हनूमान को सुत कहकर सम्बोधन किया करते हैं। यथा—

**सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि विचार मनमाहीं।**

भगवान राम ने विभीषण को यह संकेत किया कि हमारे पास एक ऐसा अजयरथ है जिसपर बैठकर समस्त संसार पर विजय प्राप्त की जा सकती है। तात्पर्य यह है कि अध्यात्मिक बल से युक्त होने पर संसार का किसी प्रकार का भय उसी प्रकार नहीं रहता जैसे जाग्रत में खड़े होनेपर स्वप्न संसार का भय निर्मूल हो जाता है।

जैसे व्यावहारिक सत्ता में अभिमान करनेपर प्रातिभासिक सत्तासे निर्भयता प्राप्त हो जाती है उसी प्रकार परमार्थ सत्ता का अभिमान होने पर व्यावहारिक सत्ता से भी निर्भयता प्राप्त हो जाती है जिसको अध्यात्मिक बल कहते हैं और इसी को यहाँ भगवान ने अजयरथ कह कर साधनों के सहित वर्णन किया है।

वास्तव में जीव का शत्रु संसार है जिसके उत्पन्न होने के पश्चात रावण आदि अन्य शत्रु भी सताने लगते हैं। जैसे यदि स्वप्न संसार उत्पन्न न हो तो स्वप्न का कोई शत्रु वन्ध्या के पुत्र के समान सिद्ध ही नहीं हो सकता कष्ट क्या देगा उसी प्रकार यदि जाग्रत संसार उत्पन्न न हो तो जाग्रत संसार का कोई भी शत्रु आकाश में पुष्प के समान सिद्ध ही नहीं हो सकता फिर उसको जीतने की क्या आवश्यकता।

अतः संसार को ही मूल शत्रु मानना चाहिये क्योंकि जाग्रत और स्वप्न में जब तक संसार दिखाई पड़ता है तब तक जीव दुखी रहता है और सुषुप्ति में जब संसार नहीं दिखाई पड़ता तब जीव को कोई दुख नहीं रहता। यद्यपि संसार रिपु का जीतना भौतिक बल से असम्भव है परन्तु जैसे कई सौ मन के महान बलवान हाथी पर एक मन का आदमी मानसिक बल से अधिकार कर लेता है उसी प्रकार महा अजय संसार रिपु पर अध्यात्मिक बल से विजय प्राप्त की जा सकती है।

जैसे रथ पहियों के बिना नहीं खड़ा हो सकता उसी प्रकार अध्यात्मिक बल स्थानीय अजय रथ को शूरता और धीरता दो पहिये अत्यावश्यक हैं। जीव का स्वभाव है कि जिस देह को धारण करेगा उसी में अहं मम करने लगेगा यही जीव की दुर्बलता है और देहाभिमान न करना ही शूरता है। धन पुत्रादि में ममत्व शून्य होने के कारण उनके योग वियोग में और समस्त सुख दुःखों को स्वप्नवत

जानकर उनके भोग काल में किञ्चितमात्र भी हानि लाभ न मानना ही धीरता है। जैसे कुआं खोदने वाला धैर्य के साथ पृथ्वी खोदता चला जाता है जब तक पानी नहीं निकलता उसी प्रकार जो सर्वात्मा सच्चिदानन्द रामका जब तक साक्षात्कार नहीं होता तब तक बिना उकताए हुए तत्परता के साथ कठिन से कठिन विघ्नों के सिर पर पैर रख कर स्वाध्याय सत्संग आदि भगवत साक्षात्कार के साधनों में उत्साह पूर्वक लगा रहता है उसको भी धीर जानना चाहिए।

जैसे रथ में ध्वजा पताका होती है और उसकी रस्सियों में बंधे हुए घोड़े खींचते हैं उसी प्रकार अजयरथ में सत्य और शील अर्थात सत्य प्रिय हितकारी बचन बोलने का स्वभाव ध्वजा पताका तथा बल, विवेक, दम, परहित चार घोड़े हैं और छमा कृपा समता तीन रस्सियाँ है। क्षमा कर देने से जिस अपराधी का सुधार हो सकता है, शक्ति होने पर भी उसको दण्ड न देना क्षमा है और दुखी की प्रीति पूर्वक सहायता करना दया है। शत्रु मित्र, सुख दुःख, हानि लाभ सबको माया मात्र मिथ्या जानना समता कहलाती है।

जैसे शरीर का बल प्राण है उसी प्रकार भगवत प्राप्ति के समस्त साधनों का बल विश्वास है। अतः पहला घोड़ा विश्वास है और दूसरा घोड़ा विवेक है। जैसे जब तक विष से मिले हुए भोजन को कोई विषैला और संजीवनी बूटी को अमरत्व प्रदान करनेवाली नहीं जानेगा तबतक उस बिषैले भोजन से प्रवृत्ति दूर होना और संजीवनीबूटी की ओर प्रवृत्ति होना कठिन है उसी प्रकार जब तक यह विवेक न होगा कि समस्त भोग जन्ममरण रूप दुःख को उत्पन्न करने वाले हैं और केवल भगवान राम ही सुखदाता हैं जो जीव रूपसे सर्व अन्तःकरणों में प्रकट हैं तब तक इन्द्रियों की विषय भोगों से प्रवृत्ति दूर नहीं होगी और सर्वभूतों के हित में भेद बुद्धि होने के

कारण रति न होगी। अतः क्रमशः विश्वास, विवेक, इन्द्रिय दमन और परहित अजय रथ को खींचने वाले चार घोड़े हैं जो क्षमा कृपा समता रूपी रस्सियों से बंधें हुए हैं। जैसे रथ को चलानेवाला सारथि चतुर होना चाहिए उसी प्रकार अजयरथका सारथि सुजान हरिभजन ही है। भेद भ्रान्ति को दूर करके आत्मा परमात्मा का अभेद चिन्तवन ही सुजान हरि भजन है।

जैसे शत्रु से युद्ध करने के लिये अस्त्र-शस्त्र होना चाहिये उसी प्रकार महाअजय संसार रिपु को जीतने के लिए वैराग्य रूपी ढाल संतोषरूपी तलवार, दानरूपी फरसा बुद्धि रूपी प्रचंड शक्ति संशय विपर्यय रहित विज्ञान रूपी धनुष, मलविक्षेप आवरण से रहित मन रूपी तरकश, सम यम नियम रूपी बाण तथा श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुकी पूजा-रूपी कवच परमआवश्यक है। दृश्य को स्वप्नवत मान कर सत बुद्धि और सुख बुद्धि का अभाव ही वैराग्य है। सांसारिक सुख की प्राप्ति निवृत्ति मे हानि लाभ अनुभव न करना और निजानन्द में तृप्त रहना सन्तोष है। तन, मन, धन विद्या से दूसरे को सुख देना ही दान है। सर्वात्मा सच्चिदानन्द राम से अतिरिक्त आकाश में नीलभावत प्रतीत होनेपर भी दृश्य कुछ नहीं है, इस प्रकारका दृढ़ निश्चय रखनेवाली बुद्धि ही प्रचंड शक्ति है। जैसे अज्ञानी देहको आत्मा जाननेमें किसी प्रकार का संशय भ्रम नहीं करता उसी प्रकार सच्चिदानन्द सर्वात्मा रामको संश्य और भ्रम से रहित अपनी आत्मा जानना वर विज्ञान कहलाता है। स्वच्छ दर्पणवत अज्ञान संशय भ्रम से रहित मन को अमल अचल मन समझना चाहिए।

तरंगें जैसे जल से पूर्ण हैं इसी प्रकार सम्पूर्ण जड़जङ्गम प्राणियों में सर्वाधिष्ठान व्यापक सच्चिदानन्द राम को पूर्ण देखने को सम कहना चाहिए। देह इन्द्रियों से असंग रहना यम है और सर्वात्मा सच्चिदानन्द

राम में उसी प्रकार अनुरक्ति होना जैसे अविवेकी को देह में अनुरक्ति होती है नियम है यथाः—

देहेन्द्रियेषु वैराग्यं यमुच्यते बुधैः।
अनुरक्तिः परे तत्वे सततं नियमः स्मृतः॥

(त्रिशिखि ब्राह्मण उ०)

जैसे शत्रु के अस्त्रशस्त्रों से बचने के लिए कवच अत्यन्त आवश्यक है उसी प्रकार श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु की सेवा में तन मन धन सर्वस्व अर्पण कर देना रूप कवच उसका अवश्यमेव धारण करना होगा जो महाअजय संसार रिपु पर विजय प्राप्त करना चाहता है। कवच धारण किये बिना संसार को जीतने की आशा करना उसी प्रकार व्यर्थ है, जैसे सूर्य के बिना रात्रि के नष्ट होने की आशा व्यर्थ है। यदि सर्व अंगों से पूर्ण अजय रथ पर इस प्रकार का कवच धारण करके स्थित हो जाये तो संसार रूपी शत्रु खोजने से भी उसी प्रकार नहीं मिलेगा जैसे सूर्य के प्रकाश में रात्रि का और जाग्रत में स्थित हो जाने पर स्वप्न का खोजने पर भी पता नहीं चलता।

दो० जीति मोह महिपाल दल, सहित विवेक भुआल।
करते अकटक राजपुर, सुखसंपदा सुकालु॥

विभीषण का मोहनाश करके भगवान राम के बाणों से रावण के शिर कटकर गिर पड़ते थे परन्तु बार बार पूर्ववत नवीन वैसे ही उत्पन्न हो जाते थे जैसे सुषुप्ति में जाग्रत स्वप्न स्थूल सूक्ष्म प्रपंच का अभाव हो जाता है परन्तु पुनः पूर्ववत वैसा ही प्रतीत होने लगता है। जैसे सुषुप्ति में अविद्या और संसकार शेष रहने के कारण पुनः

पुनः वैसे ही दृश्य की प्रतीति होती रहती है क्योंकि कारण अविद्या में कार्य दृश्य की सुषुप्ति में लय रूप निवृत्ति होती है अत्यन्त निवृत्ति नहीं होती उसी प्रकार रावण की नाभिकुण्ड में अविद्या स्थानीय अमृत शेष रहने के कारण उसके शिर कटने पर भी पुनः वैसे ही उत्पन्न हो जाते थे। विभीषण द्वारा इस रहस्य को जान लेने पर भगवान राम नेः—

दो० खैंचि सरासन श्रवन लगि, छाड़े सर एकतीस।
रघुनायक सायक चले, मानहु काल फनीस॥

एक बाण द्वारा रावण के नाभिकुण्ड का अमृत जला दिया तथा बीस बाणों से बीस भुजाएँ काट डाली और दस बाणोंसे दसों शिरोंको काटकर पृथ्वी पर गिरा दिया। तत्पश्चात्—

गर्जउ मरत घोर रव भारी। कहाँ राम रन हतौं पचारी।

रावण के हृदय में भगवान राम के प्रति अनन्य भक्ति थी परन्तु ऊपर से शत्रुता का भाव दिखलाता रहा। उसने केवल शरीर छोड़ते समय ही राम शब्द का एक ही बार उच्चारण किया और कभी अपने जीवन काल में राम नहीं कहा। प्रसंग आने पर राम को तपसी कह-कर सम्बोधित करता था। हृदय से एक बार भी नाम लेने का फल क्या हुआ, सुनोः—

तासु तेज समान प्रभु आनन। हरषे देखि शम्भु चतुरानन।

जैसे घट फूटने पर घटा काश महाकाश में समाजाता है अथवा जल के नाश होने पर जल में दिखाइ पड़ने वाला सूर्य का प्रतिबिम्ब बिम्बसूर्य में समाजाता है अथवा जल के नाश होने पर जल में दिखाई पड़ने वाला सूर्यका प्रतिबिम्ब बिम्ब सूर्य में समाजाता है

अथवा जैसे काष्ट में प्रकट हुई विशेष अग्नि काष्ट के भस्म हो जाने पर सामान्य अग्नि में समाजाती है उसी प्रकार रावण का आत्मा भगवान राम के सच्चिदानन्द स्वरूप में समा गया। हे उमा!

बारेक राम कहत जग जेऊ। होत तरन तारन नर तेऊ।
जाकर नाम मरत मुख आवा। अधमहु मुक्त होइ श्रुति गावा।

जब मरते समय एक बार नाम लेने से मुक्ति हो सकती है तो आयु भर भगवन्नाम को ही धारण करने वाले की मुक्ति में क्या कहना है।

रावण के मरने पर देवता लोग आनन्द में मग्न हो गए और :—

जै जै धुनि पूरी ब्रह्मण्डा। जय रघुवीर प्रबल भुज दंडा।
बरषहिं सुमन देव मुनि वृन्दा। जयकृपाल जय जयति मुकुन्दा।

दो० कृपादृष्टि करि वृष्टि प्रभु, अभय किए सुर वृन्द।
भालु कीस सब हरषे, जय सुखधाम मुकुन्द॥

रावण की स्त्री मंदोदरी पति के वियोग में महान दुखी हुई।

पति गति देखि ते करहिं पुकारा। छूटे कच नहिं वपुष संभारा।
तव बल नाथ डोल नित धरनी। तेज हीन पावक ससि तरनी।
शेष कमठ सहि सकहिं नभारा। सो तनु भूमि परेउ भरिछारा।
भुजबल जितेउ काल जम साईं। आज परेउ अनाथ की नाईं।
राम विमुख अस हाल तुम्हारा। रहा न कोउ कुल रोवनहारा।
अब तव सिरभुज जंबुक खाहीं। राम विमुख यहअनुचित नाहीं।
काल विवश पतिकहा नमाना। अगजग नाथ मनुजकरि जाना।

दो० अहह नाथ रघुनाथ सम, कृपासिंधु नहिं आन।
जोगि वृन्द दुर्लभ गति, तोहि दीन्ह भगवान॥

तत्पश्चात् भगवान राम की आज्ञा से विभीषण को लंका का राजतिलक कर दिया गया। फिर छाया सीता को अशोक वाटिका से राम के समीप लाया गया। भगवान ने आज्ञा दी कि:—

कह रघुबीर कहा मम मानहु। सीतहिं सखा पयादें आनहु।
देखहु कपि जननी की नाईं। बिहँसि कहा रघुनाथ गोसाईं।
सुनि प्रभु बचन भालु कपि हरषे। नभ ते सुरन्ह सुमन बहु बरषे।
सीता प्रथम अनल महुँ राखी। प्रगट कीन्हि चह अंतर साखी।

दो० तेहि कारन करुनानिधि, कहे कछुक दुर्बाद।
सुनत जातुधानी सब, लागीं करै बिषाद॥

प्रभु के बचन सीस धरि सीता। बोली मन क्रम बचन पुनीता।
लछिमन होहु धरम के नेगी। पावक प्रगट करहु तुम्ह बेगी।
देखि राम रुख लछिमन धाए। पावक प्रगटि काठ बहु लाए।
पावक प्रबल देखि बैदेही। हृदय हरष नहिं भय कछु तेही।
जौं मन बच क्रम मम उर माहीं। तजि रघुबीर आन गति नाहीं।
तौ कृसानु सब कै गति जाना। मो कहुं होउ श्रीखंड समाना।

छं० श्रीखंड सम पावक प्रवेश कियो सुमिरि प्रभु मैथिली।
जय कोशलेश महेश वंदित चरन रति अति निर्मली।
प्रतिबिम्ब अरु लौकिक कलंक प्रचंड पावक महुँ जरे।
प्रभु चरित काहुं न लखे नभ सुर सिद्ध मुनि देखहिं खरे॥

धरि रूप पावकपानि गहि श्रीसत्य श्रुति जग विदित जो।
जिमि छीर सागर इन्दिरा रामहिं समर्पी आनि सो।
सो राम वाम विभाग राजति, रुचिर अति शोभा भली।
नव नील नीरज निकट मानहु, कनक पंकज की कली॥

दो० जनक सुता समेत प्रभु, शोभा अमित अपार।
देखि भालु कपि हरष, जय रघुपति सुखसार॥

जैसे ज्ञानाग्नि से चिदाभास का बाध होकर जीवसाक्षी कूटस्थ में आत्मभाव प्रकट हो जाता है उसी प्रकार छाया सीता अग्नि में जल गई और असली सीता प्रकट हो गई। तत्पश्चात देवताओं ने भगवान राम की अनेक प्रकार स्तुति की:—

दीन बन्धु दयाल रघुराया। देव कीन्ह देवन पर दाया।
तुम्ह सम रूप ब्रह्म अविनाशी। सदा एकरस सहज उदासी।
अकलअगुन अजअनघअनामय। अजितअमोघ शक्ति करुनामय।
भव प्रवाह संतत हम परे। अब प्रभु पाहि सरन अनुसरे।

फिर ब्रह्मा जी स्तुति करने लगे:—

जै राम सदा सुखधाम हरे। रघुनायक सायक चाप धरे।
अज व्यापक मेक मनादि सदा। करुनाकर राम नमामि मुदा।
अनवद्य अखंड न गोचर गो। सब रूप सदा सब होइ न गो।
इति वेद वदन्ति न दंत कथा। रवि आतप भिन्न न भिन्न जथा।
अब दीन दयाल दया करिये। मति मोरि विभेद करी हरिए।
जेहि ते विपरीत क्रिया करिए। दुख सोसुखमानि सुखी चरिए।

दो० विनय कीन्हि चतुरानन, प्रेम पुलक अति गात।
शोभा सिंधु विलोकत, लोचन नहीं अघात॥

हे उमा! मैंने भी भगवान राम की अनेक प्रकार से स्तुति की। तत्पश्चात् विभीषण ने भगवान राम से अपने गृह को पवित्र करने के लिए प्रार्थना क । भगवान राम ने विभीषण से कहा—

दो० बीते अवधि जाउँ जो, जियतन पावउँ वीर।
सुमिरत अनुज प्रीति प्रभु, पुनि पुनि पुलक शरीर॥

करेहु कल्प भरि राज तुम्ह, मोहि सुमिरहु मनमाहिं।
पुनि मम धाम पाइहहु, जहाँ संत सब जाहिं॥

भगवान राम का आशीर्वाद पाकर विभीषण प्रेम में मग्न हो गये तत्पश्चात सांसारिक वस्त्र आभूषण आदि से भरा हुआ पुष्पक विमान भगवान राम को विभीषण ने अति नम्रता से भेंट किया और फिर भगवान राम की आज्ञा से उस विमान पर बैठकर आकाश में जाकर सम्पूर्ण सामग्री की वर्षा कर दी। अपनी अपनी रुचि के अनुसार सबने वस्तुओं को उठा लिया और सब हर्ष को प्राप्त हुए। तत्पश्चात भगवान राम लक्ष्मण और सीता समेत विमान पर बैठ गये और अतिशय प्रेम देखकर हनूमान, सुग्रीव, अंगद रीछपति, नल, नील, विभीषण आदि प्रमुख गणों को भी विमान पर चढ़ा लिया और अयोध्या के लिए प्रस्थान किया:—

चलत विमान कोलाहल होई। जय रघुवीर कहत सबकोई।

दो० उमा जोग जप दान तप, नाना मख व्रत नेम।
राम कृपा नहिं करहिं तसि, जसि निष्केवल प्रेम॥

भगवान रामने सीता को विमान से युद्ध भूमि दिखलाई और वह स्थान भी दिखलाये जहाँ रावण कुम्भकरण मेघनाद आदि वीरों का वध हुआ था। तत्पश्चात दण्डक वन और चित्रकूट में ऋषियों मुनियों को दर्शन देते हुए प्रयाग पहुँच गये और विमान से उतर कर त्रिवेणी में सब ने स्नान किया और विप्रों को दान दिया।

भगवान रामने प्रयाग से हनुमान को भरतजी का कुशल समाचार लाने के लिए अयोध्या भेज दिया। महात्मा तुलसीदासजी अपने श्रोता मन से कहते हैं कि मुनि भरद्वाज से भेंट कर के भगवान रामने गंगा को पार किया और किनारे पर विमान से उतर कर अनन्य प्रेमी केवट को दर्शन दिया और उसको प्रेम में समाधिस्थ देखकर हृदय से लगा लिया।

छं० सब भाँति अधम निषाद सो हरि भरत ज्यों उर लाइयो।
मतिमंद तुलसी दास सो प्रभु मोह बस बिसराइयो।
यह रावनारि चरित्र पावन राम पद रति प्रद सदा।
कामादि हर विज्ञानकर सुर सिद्ध मुनि गावहिं मुदा॥

दो० समर विजय रघुवीर के, चरित जे सुनहिं सुजान।
विजय विवेक विभूति नित, तिन्हहि देहि भगवान॥
यह कलिकाल मलायतन, मन करि देखु विचारि।
श्री रघुनाथ नाम तजि, नाहिन आन अधार॥

हे उमा! इधर अवध वासियों की दशा अत्यन्त शोचनीय हो गई थी क्योंकि केवल एक दिन भगवान राम के वन से लौटने की अवधि का शेष रह गया था। जैसे पानी बहुत थोड़ा रह जाने पर मछलियाँ

तालावमें छटपटाने लगती हैं यहीं दशा अवधके निवासियोंकी भी थी क्योंकि वे मछलियों के समान थे और अवधि जल के समान थी जिसमें केवल एक दिन शेष रह गया था। भरतजी भी मन में सोच सोच कर महान दुखी हो रहे हैं।

रहेउ एक दिनअवधि अधारा। समुझत मनदुखभयउ अपारा।
कारनकवननाथनहिंआयउ। जानिकुटिलकिधौंमोहिंबिसरायउ।
अहह धन्य लछिमन वड़भागी। राम पदारविंदु अनुरागी।
कपटी कुटिल मोहिं प्रभु चीन्हा। ताते नाथ संग नहिं लीन्हा।
बीते अवधि रहहिं जौं प्राना। अधम कवन जगमोहि समाना।

तात्पर्य यह है कि महा अधम मछली भी जल के समाप्त होने पर अपने प्रेमी के वियोग में प्राण छोड़ देती है। यदि अवधि के समाप्त होने पर भी मेरे प्राण नहीं निकले तो मछली से अधिक अत्यन्त नीच अपने को समझूंगा।

दो० राम विरह सागर महँ, भरत मगन मन होत।
विप्ररूप धरि पवन सुत, आइ गयउ जनु पोत॥
बैठे देखि कुसानन, जटामुकुट कृषगात।
राम राम रघुपति जपत, स्रवत नयन जलजात॥

मिलत प्रेम नहिं हृदयसमाता। नयन स्रवतजलपुलकित गाता।
वार वार बूझी कुशलाता। तो कहुं देउँ काह सुनु भ्राता।
एहि संदेश सरिस जगमाहीं। करि बिचार देखेउँ कछु नाहीं।

नाहिन तात उरिन मैं तोही । अब प्रभु चरित सुनावहु मोही ।
तब हनुमंत नाइ पद माथा । कहे सकल रघुपति गुनगाथा ।
सो० भरत चरन सिर नाइ, तुरित गयउ कपि राम पहिं ।
कही कुशल सब जाइ, हरष चलेउ प्रभु जान चढ़ि ॥

भगवान राम अवध की महिमा वर्णन करते हुए सबसे कह रहे हैं—

जद्यपि सब वैकुण्ठ बखाना । वेद पुरान विदित जग जाना ।
अवध पुरी समप्रियनहिं साऊ । यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ ।

तात्पर्य यह है कि आदि स्थान होने से जैसे जाग्रत स्वप्न से श्रेष्ठ हैं उसी प्रकार अवध वैकुण्ठ से भी श्रेष्ठ है क्योंकि भगवान रामका आदि स्थान है। अवध में विमान पहुँचते हीः—

जो जैसेहि तैसेहिं उठि धावहिं । बाल-वृद्ध कहँ संगन लावहिं ।
अवधपुरी प्रभु आवत जानी । भई सकल शोभा कैं खानी ।

भगवान राम अवधपुरी का फिर वर्णन कर रहे हैं—

जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि । उत्तर दिशि बह सरजू पावनि ।
जा मज्जन ते विनहिं प्रयासा । मम समीप नर पावहिं वासा ।
अति प्रिय मोहिं इहाँ के वासी । मम धामदा पुरी सुखरासी ।

जैसे ब्रह्माण्ड में अवधपुरी भगवत धाम को देने वाली है उसी प्रकार पिण्ड में मल विक्षेप आवरण से रहित अन्तःकरण रूपी अवध परमधाम कैवल्य परम पद को देने वाला है। वाल्मीक जीने भी शुद्ध अन्तःकरणों का भगवान रामका निवासस्थान बतलाया है तथा :—

अवध तहाँ जहँ राम निवासू । तहँइँ दिवस जहँ भानु प्रकासू ।

विमान से उतरते ही भगवान राम के चरणों को भरतजी ने पकड़ लिया तथाः—

परे भूमि नहिं उठत उठाए। बर करि कृपासिन्धु उर लाए।
श्यामलगात रोम भए ठाढ़े। नव राजीव नयन जल बाढ़े।
धाइ धरे गुरु चरन सरोरुह। अनुज सहितअतिपुलक तनोरुह।
सकल द्विजन्ह मिलिनायउ माथा। धर्म धुरन्धर रघुकुल नाथा।
प्रेमातुर सब लोग निहारी। कौतुक कीन्ह कृपाल खरारी।
अमित रूप प्रगटेतेहि काला। जथा जोग मिलेसबहि कृपाला।
कृपादृष्टि रघुवीर बिलोकी। किए सकल नरनारि बिसोकी।
छन महिंसबहिं मिलेभगवाना। उमा मरम यह काहुं न जाना।
कौसल्यादि मातु सब धाई। निरखि वच्छ जनु धेनु लवाई।
सासुन्ह सबनि मिली वैदेही। चरनन्हि लागि हरष अति तेही।
देहिं अशाश बूंझि कुशलाता। होइ अचल तुम्हार अहिवाता।
कनक थार आरती उतारहिं। बार बार प्रभुगात निहारहिं।

दो० लछिमन अरु सीता सहित, प्रभुहि विलोकत मातु,
परमानन्द मगन मन, पुनि पुनि पुलकित गात॥

हे उमा! क्षण मात्र में अनेक रूप धारण करके भगवान रामने समस्त पुरवासियों को एक साथ दर्शन दिया परन्तु एक से अनेक होने के रहस्य को कोई नहीं जान सका। जो अपनी माया से चराचर जगत रूप में भासमान हो रहा है और परमार्थतः कुछ भी नहीं बना उसके लिए समस्त अयोध्या वासियों को क्षण मात्र में एक साथ

अनेक रूप होकर दर्शन दे देना कौन बड़ी बात है। वास्तव में दृष्टा, दर्शन तथा दृश्य सर्व राम ही का स्वप्नवत स्वरूप हैं और सर्व होते हुए भी सर्वात्मा भगवान रामका सर्वाधिष्ठान सच्चिदानन्द परमार्थ स्वरूप ज्यों का त्यों अच्युत एकरस असंग अखण्ड निर्विकार निर्द्वैत परमानन्द घन रूप से स्थित रहता है। जैसे अनेक भूषण बनने पर भी स्वर्ण अपने स्वर्णत्वका परित्याग नहीं करता उसी प्रकार सर्वात्मा सर्वाधिष्ठान सच्चिदानन्द राम चराचर रूप होने पर भी अपने ब्रह्मत्व का त्याग नहीं करते।

दो० यह रहस्य रघुनाथ कर, वेगि न जानइ कोइ।
जो जानइ रघुपति कृपा, सपनेहुं मोह न होइ॥

तत्पश्चात बड़ी धूमधाम से भगवान राम को राज तिलक किया गया।

सिंहासन पर त्रिभुवन साईं। देखि सुरन्ह दुंदुभी बजाईं।
वेद मंत्र तव द्विजन्ह उचारे। नभ सुरमुनि जय जयति पुकारे।
प्रथम तिलकवशिष्ठमुनिकीन्हा। पुनि सवविप्रन्हआयसु दीन्हा।
सुत विलोकि हरषीं महतारी। वार-वार आरती उतारी।

वेद भी वंदी के वेष में प्रकट होकर अस्तुति करने लगे:—

छं० अव्यक्त मूल मनादि तरु त्वच चारि निगमागम भने।
षट कंध शाखा पंच वीस अनेक पर्न सुमन घने।
फल जुगलविधिकटु मधुर वेलि अकेलि जेहिआश्रित रहे।
पल्लवत फूलत नवल नित संसार विटप नमामहे।

जैसे बीज ही वृक्षरूप में प्रकट होता है उसी प्रकार सर्व व्यापक सच्चिदानन्द राम ही संसार रूप में प्रकट हुए हैं। अतः संसार वृक्ष

का बीज अर्थात् अधिष्ठान सच्चिदानन्द ब्रह्म राम हैं और जलतरंगवत रामकी स्वरूप भूताशक्ति माया संसार वृक्षका मूल है। जैसे जाग्रतका विस्मरण ही स्वप्नका मूल है उसी प्रकार भगवान रामके परमार्थ स्वरूप का विस्मरण जाग्रत ससारका मूल है। अतः भगवत विस्मरण को ही माया समझनी चाहिए। जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति तुरीय इस ससार वृक्ष की चार त्वचाएँ है जिनमें तुरीय सर्व के अन्तर है। जन्म, सत्ता, वृद्धि, परिणाम, अपक्षय, विनाश षट स्कन्ध हैं। पंचीकृत आकाश के पाँच तत्व शोक काम क्रोध मोह भय, पंचीकृत वायु के पाँच तत्व चलन वलन धावन प्रसारण अंकुचन, पंचीकृत अग्नि के पाचतत्व क्षुधा, तृषा, कान्ति, निद्रा, आलस्य, पंचीकृत जल के पाँच तत्व, वीर्य, रुधिर मूत्र, पसीना, लाल तथा पंचीकृत पृथ्वी के पाँच तत्व त्वचा, रोम, नाड़ी, मांस, अस्थि, कुलमिल कर पचीस तत्व ही इस संसार वृक्ष की पचास शाखाएँ हैं। अनेक प्रकार के शुभाशुभ कर्म ही इस संसार वृक्ष के पत्ते हैं और सात्वकी राजसी तामसी कामनाएँ ही फूल हैं तथा सुख दुख मीठे कडुए फल हैं। आवरण शक्ति रूपा अविद्या ही इस संसार वृक्ष की बेलि है। स्वप्न के समान ससार वृक्ष नित्य नवीन हरा भरा दिखाई पड़ता है।

जैसे स्वप्न साक्षी ही अपनी माया से स्वप्न रूप में प्रतीत होता है उसी प्रकार जाग्रत साक्षी सच्चिदानन्द राम को ही सवरूप समझकर संसार वृक्ष को भी नमस्कार किया।

हे उमा! राजतिलक होने के कुछ दिन बाद भगवान राम ने अपने सब सेवकों को बुलाकर पास बिठाया और कहने लगेः—

तुम्ह अति कीन्हि मोर सेवकाई। मुखपर केहिविधि करौं बड़ाई।
ताते मोंहि तुम्ह अतिप्रिय लागे। ममहित लागि भवनसुख त्यागे
अनुज राज संपति वैदेही। देह गेह परिवार सनेही।

सब मम प्रिय नहिं तुम्हहि समाना। मृषा न कहउँ मोर यह बाना।
सबके प्रिय सेवक यह नीती। मोरे अधिक दास पर प्रीती।

दो० अब गृह जाहु सखा सब, भजहु मोहि दृढ़ नेम।
सदा सर्वगत सर्वहित, जानि करेहु अति प्रेम॥

तात्पर्य यह है कि मेरा सगुण रूप अयोध्या में ही प्रतीत होता है परन्तु निर्गुण स्वरूप आकाश वत सर्वत्र है और सर्व जीवों का आत्मा उसी प्रकार है जैसे जल सर्व तरंगों का आत्मा होता है। अतः मुमुक्षु सच्चिदानन्द निर्गुण सर्वात्मा सर्वाधिष्ठान ब्रह्म को सर्वत्र व्यापक जान कर चिन्तन करना चाहिये और अपनी आत्मा समझ कर परम प्रेम करना चाहिये गौण प्रेम नहीं क्योंकि 'आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रिय भवति'। ( ब्र० उ० )

धनादि स्त्री पुत्रों के लिए प्रिय हैं। स्त्री पुत्र शरीर के लिए प्रिय हैं। शरीर इन्द्रियों के लिए प्रिय हैं। इद्रिन्याँ प्राणों के लिए प्रिय हैं। प्राण मन के लिए प्रिय है। मन बुद्धि के लिए प्रिय है। बुद्धि चित्त के लिए प्रिय है। चित्त अहंकार के लिये प्रिय है। अहंकार आत्मा के लिए प्रिय है।

अतः परम प्रिय आत्मा हुआ जो मेरा ही स्वरूप उसी प्रकार है जैसे महाकाश का ही स्वरूप घटाकाश भी होता है। जैसे बिजली व अग्नि लट्टू व कोयला में प्रकट होने पर भी सामान्य रूप से सर्वत्र व्यापक हैं उसी प्रकार अयोध्या में सच्चिदानन्द भगवान राम का अवतार होने पर भी वह निर्गुण रूप से सर्वत्र व्यापक है। व्यापक होने का यह भी कारण है कि संसार भगवान राम का उसी प्रकार कार्य है जैसे स्वप्न आत्मा का कार्य है अथवा भूषण स्वर्ण के कार्य हैं।

अतः जैसे आत्मा का स्वप्न में और स्वर्ण का भूषणों में व्यापक होना अनिवार्य है उसी प्रकार परमात्मा राम का सम्पूर्ण संसार में व्यापक होना अनिवार्य है।

प्रिय सखाओं को विदा करके प्रजा में सुख शान्ति का प्रचार किया और प्रजा को प्रिय पुत्र के समान पालन करने लगे। भगवान राम के राज्य में शत्रुओं और अपराधियों का अभाव था इस कारण दण्ड और भेद नीति का प्रयोग कहीं नहीं होता था, केवल दण्ड शब्द का प्रयोग डंडे के अर्थमें दण्डी संन्यासियों के हाथमें रहनेवाले दण्ड के लिए किया जाता था और भेद शब्दका प्रयोग नाचने गाने वालों के समाज में सुर ताल के भेद के लिए ही किया जाता था तथा 'जीतो' शब्द केवल मन के जीतने के लिए सुनाई पड़ता था क्योंकि भगवान राम सदैव आध्यात्मिक अजयरथ पर सवार रहते थे जिसके कारण शत्रुओं का अभाव हो गया था। यथाः—

दो० दण्ड जतिन्ह कर भेद जहँ, नर्तक नृत्य समाज।
जीतहु मनहिं सुनिअ अस, रामचन्द्र के राज।

भगवान राम ने सत्संग का सर्वत्र प्रचार करके समस्त प्रजाको जीवन्मुक्त बना दिया। सबसे पहले भगवान रामने अपने गृह पर सत्संग स्थापित किया जिसका प्रभाव यह हुआ कि मुहल्ले मुहल्ले सत्संग स्थापित हो गए। तत्पश्चात प्रत्येक गृह में नियमित रूप से सत्संग होने लगा और सर्व स्त्री पुरुष अहर्निशि भगवत गुणानुवाद में मग्न रहने लगे यथाः—

प्रात काल सरयू करि मज्जन। बैठहिं सभा संग द्विज सज्जन।
वेद पुरान वशिष्ठ बखानहिं। सुनहिं राम जद्यपि सब जानहिं।

भगवान राम के गृह में सत्संग स्थापित होने का यह प्रभाव हुआ कि—

जहँ तहँ नर रघुपति गुनगावहिं। बैठि परस्पर इहइ सिखावहिं।
भजहु प्रनत प्रतिपालक रामहिं। सोभा सील रूप गुन धामहिं।

मुहल्ले-मुहल्ले सत्संग स्थापित होने के पश्चात:—

सबके गृह गृह होहिं पुराना। राम चरित पावन विधि नाना।
नर अरु नारि रामगुन गावहि। करहि दिवस निसि जात न जानहिं।

सर्वत्र सत्संग की स्थापना करके भगवान राम कभी-कभी उत्सव किया करते थे जिसमें समस्त सत्संगमंडल सम्मिलित होते थे और भगवान राम का उसमें सारगभित सर्वकल्याणप्रद व्याख्यान हुआ करता था। महात्मा तुलसीदास अपने श्रोता मन से कह रहे हैं कि श्री यज्ञवल्क्यजी ने भरद्वाजजी से कहा कि भगवान शंकर पारवती जी से बोले कि मैं एक उत्सव में भगवान राम द्वारा दिये हुए व्याख्यान का वर्णन करता हूँ ध्यानपूर्वक सुनो।

एक बार रघुनाथ बोलाए गुरु द्विज पुरवासीं सब आए।
बैठे गुरु मुनि अरु द्विज सज्जन। बोले वचन भगत भव भंजन।
सुनहु सकल पुरजन ममबानी। कहउँ न कछु ममता उरआनी।
नहिं अनीति नहिं कछु प्रभुताई। सुनहु करहु जो तुम्हहि सोहाई।
सोइ सेवक प्रियतम मम सोई। मम अनुसासन मानै जोई।
बड़े भाग्य मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रन्थन्हि गावा।
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जेहि परलोक सँवारा।

दो० सो परत्र दुख पावइ, सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईश्वरहि, मिथ्या दोष लगाइ।

एहि तनकर फल विषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई।
नर तनु पाइ विषय मन देही। पलटि सुधा ते सठ विष लेही।
ताहि कबहुँ भल कहइ न कोई। गुंजा ग्रहइ परस मनि खोई।
आकर चारिलच्छ चौरासी। जोनि भ्रमत यह जिव अविनासी।
फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म सुभाव गुन घेरा।
कबहुंक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही।
नर तनु भव बारिधि कहुं बेरो। सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो।
करन धार सदगुरु दृढ़ नावा। दुर्लभ साज सुलभ करि पावा।

दो० जो न तरै भवसागर, नर समाज अस पाइ।
सो कृत निन्दक मंदमति, आत्माहन गति जाइ॥

जो परलोक इहाँ सुख चहहू। सुनि मनवचन हृदय दृढ़ गहहू।
सुलभ सुखद मारग यह भाई। भगति मोरि पुरान श्रुति गाई।
भक्ति स्वतंत्र सकल सुखखानी बिनु सत्संग न पावहिं प्रानी।
कहहु भगति पथ कवन प्रयासा। जोग न मख जप-तप उपवासा
सरल सुभाव न मन कुटिलाई। जथा लाभ संतोष सदाई।
मोर दास कहाइ नर आसा। करइ तौ कहहु कहा विश्वासा।
बहुत कहउँ का कथा बढ़ाई। एहि आचरन वस्य मैं भाई।
वैरन विग्रह आस न त्रासा। सुख मय ताहि सदा सब आसा।

अनारंभ अनिकेत अमानी। अनघ अरोष दच्छ विज्ञानी।
प्रीति सदा सज्जन संसर्गा। तृन सम विषय स्वर्ग अपवर्गा।
भगति पच्छ हठ नहिं सठताई। दुष्ट तर्क सब दूरि बहाई।

दो० मम गुन ग्राम नाम रत, गत ममता मद मोह।
ताकर सुख सोइ जानइ, परानन्द संदोह॥

सुनत सुधा सम वचन राम के। गहे सबनिपद कृपा धाम के।
असि सिख तुम्ह बिनु देइ न कोऊ। मातु पिता स्वारथ रत होऊ
हेतु रहित जग जुग उपकारी। तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी।

हे उमा! श्रोतागण भगवान राम से कह रहे हैं कि आप को और आपके अनन्य भक्तों को छोड़ कर:—

स्वारथ मीत सकल जग माहीं। सपनेहुँ प्रभु परमारथ नाहीं।
सबके वचन प्रेम रस साने। सुनि रघुनाथ हृदय हरषाने।
निज निज गृह गए आयसु पाई। बरनत प्रभु बतकही सुहाई।

दो० उमा अवध वासी नर नारि कृतारथ रूप।
ब्रह्म सच्चिदानन्दघन, रघुनायक जहँ भूप॥

भगवान राम के उपदेश का तात्पर्य यह है कि जैसे जहाज समुद्र पार करने के लिए ही बनाया जाता है उसी प्रकार मनुष्य शरीर जीव को संसार सागर पार करने के लिए ही ईश्वर की महान कृपा से प्राप्त हुआ है जिसके द्वारा जीव भक्ति वैराग्य ज्ञान प्राप्त करके संचित और क्रियमाण कर्मोंको बिना भोगे ही नष्ट करके और प्रारब्ध को भोग द्वारा समाप्त करके पुनर्जन्म से छुटकारा पा सकता है।

जैसे बीज से वृक्ष और वृक्ष से बीज की परम्परा सदा से चली आई है और सदा चलती रहेगी परन्तु जो बीज भून दिया जाए उससे फिर वृक्ष उत्पन्न नहीं हो सकता उसी प्रकार कर्म से शरीर और शरीर से कर्म की परम्परा अनादि काल से चल रही है और चलती रहेगी। यदि कर्मों को ज्ञानाग्नि से भून दिया जाये तो अविद्या जनित कर्तृत्व अभिमान नष्ट हो जाने के कारण कर्म में शरीर उत्पन्न करने की सामर्थ्य नहीं रहती क्योंकि अविद्या और कर्तापन का अभिमान ही कर्म में जन्म देने की शक्ति है। जैसे चोर को पहले हवालात होती है तत्पश्चात हवालात से जेलमें भेजा जाता है उसी प्रकार ईश्वर सृष्टि में में मेरा करने वाला जीव चोर है जिसको १९ लाख अण्डजव ३४ लाख पिंडज व २० लाख उद्भिज और ११ लाख स्वेदज ८४ लक्ष योनियों को उत्पन्न करने वाली चार प्रकार की खानि रूपी हवालात में बन्द रहना पड़ता है और हवालात से निकल कर संसार जेल में नाना प्रकार के दण्ड भोगना पड़ता है। जबतक गर्भ में रहे तब तक अपनेको हवालातमें समझना चाहिए और गर्भके बाहर शरीरका जन्म होनेपर जेल में आना समझना चाहिये तथा जन्म मृत्यु जरा व्याधियों से उत्पन्न होनेवाले दुःखों को जेल के दण्ड समझना चाहिये। जब भगवत्त कृपा से बहुत बड़ा पुण्य होता है तब ८४ लक्ष योनियों में पुनः पुनः भटकने वाले जीव को मोक्ष का द्वार मनुष्य शरीर उसी प्रकार बड़ी कठिनाई से प्राप्त होता है जैसे सागर में डूबते हुए को जहाज की प्राप्ति अथवा एक नन्हें बालक को सबसे ऊपर की अन्तिम सीढ़ी की प्राप्ति बहुत कठिन है। परन्तु जो बालक अन्तिम सीढ़ी पर पहुंच कर छतपर बैठी हुई माता के सन्मुख होकर माँ माँ पुकारने में व्याकुल हो जाता है और छतपर पहुंचने के लिए बार-बार ऊपर को भुजाएँ फैलाता है वह तो माता की कृपा शीघ्र प्राप्त करके छत पर पहुँच कर निर्भय हो जाता है और जो बालक माता के सन्मुख न

होकर नीचे ताकता है और कूद पड़ता है वह महान कष्ट को भोगता है। अतः अन्तिम सीढ़ी पर खड़े हुए नीचे ताकने कूदने वाले बालक से छतपर माता को ताकने पुकारने वाला बालक श्रेष्ठ है उसी प्रकार मोक्षद्वार मनुष्य देहधारी जो जीव सर्वाधिष्ठान सर्वात्मा सच्चिदानन्द राम के सन्मुख होकर सर्वात्मा राम की प्राप्ति के साधनों में मग्न है वह जीव उस अधम जीव से श्रेष्ठ है जो मोक्ष द्वार मनुष्य देह पाकर भी मोक्षस्वरूप सच्चिदानन्द सर्वात्मा सर्वाधिष्ठान नित्यप्राप्त राम की प्राप्ति के लिये शम, सन्तोष, विचार सत्संग मोक्ष साधनोंको नहीं करता और असत जड़ दुःख रूप क्षणभंगुर विषयों में उसी प्रकार आसक्त रहता है जैसे मछली जल में आसक्त रहती है।

हे उमा ! यह निश्चित मत है कि:—

मति कीरति गति भूत भलाई। जब जेहि जतन जहाँ जेहि पाई।
सो जानब सत्संग प्रभाऊ। लोकहु वेदन आनि उपाऊ।
राम राज बैठे त्रैलोका। हर्षित भए गए सब सोका।
बयर न कर काहू सन कोई। राम प्रताप विषमता खोई।

जब ते राम प्रताप खगेसा। उदित भयउ अति प्रबल दिनेसा।
पूरि प्रकास रहेउ तिहुं लोका। बहुतेन्ह सुख बहुतन मन सोका।
जिन्हहि सोक ते कहउँ बखानी। प्रथम अविद्या निसा सिरानी।
अघ उलूक जहं तहाँ लुकाने। काम क्रोध कैरव सकुचाने।
विविधि कर्म गुन काल स्वभाउ। ए चकोर सुख लहहिं न काऊ
मत्सर मान मोह मद चोरा। इन्हकर हुनर न कवनिहुँ ओरा।

धरम तड़ाग ग्यान विज्ञाना। ए पंकज विकसे विधिनाना।
सुख सन्तोष विराग विवेका। विगत सोक ए कोक अनेका।

दो० यह प्रताप रवि जाके, उर जब करई प्रकाश।
पछिले बाढ़हि प्रथम जे, कहे ते पावहिं नास॥

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहि काहुहि व्यापा।
सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति रीती
चारिउ चरन धर्म जग माहीं। पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं।
राम भगति रत नर अरु नारी। सकल परम गति के अधिकारी।
अल्प मृत्यु नहिं कवनिउ पीरा। सब सुंदर सब विरुज सरीरा।
नहिं दरिद्र कोउ दुखी नदीना। नहिं कोउ अबुधन लच्छन हीना
सब निर्दम्भ धर्मरत पुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी।
सब गुनग्य पंडित सब ज्ञानी। सब कृतज्ञ नहिं कपट सयानी।
राम राज कर सुख सम्पदा। बरनि न सकइ फनीस सारदा।
भुवन अनेक रोम प्रति जासू। यह प्रभुता कछु बहुत नतासू।
सब उदार सब पर उपकारी। विप्र चरन सेवक नर नारी।
एक नारि ब्रतरत सब झारी। ते मन बच क्रम पति हितकारी।
फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन। रहहि एक सँग गज पंचानन।
खग मृग सहज बयरु विसराई। सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई।
लता विटप मागे मधु चवहीं। मन भावतो धेनु पयस्रवहीं।
ससि सम्पन्न सदा रह धरनी। त्रेता भइ कृतजुग कै करनी।

प्रगटी गिरिन्ह विविधि मनि खानी । जगदात्मा भूप जग जानी ।
कोटिन्ह बाजिमेध प्रभुकीन्हें । दान अनेक द्विजन्ह कहँदीन्हें
श्रुतिपथ पालक धर्म धुरंधर । गुनातीत अरु भोग पुरंदर ॥
पति अनुकूल सदा रह सीता । सोभा खानि सुसील विनीता ।
जानति कृपा सिंधु प्रभुताई । सेवति चरन कमल मन लाई ।
निज कर गृह परिचरजा करई । रामचंद्र आयसु अनुसरई ।
जेहि विधि कृपा सिधु सुख मानइ । सोइ कर श्रीसेवाविधिजानइ ।
कौसल्यादि सासु गृह माहीं । सेवइ सबन्हि मान मद नाहीं ।

दो० जासु कृपा कटाच्छ सुर, चाहत चितवन सोइ ।
राम पदार बिंदरति, करत सुभावहि खोइ ॥

सेवहिं सानुकूल सब भाई । राम चरनरति अति अधिकाई ।
प्रभु मुख कमल विलोकत रहहीं । कबहुँ कृपाल हमहि कछु कहहीं
राम करहिं भ्रातन्ह पर प्रीती । नाना भाँति सिखावहि नीती ।
हरषित रहहिं नगर के लोगा । करहिं सकल सुर दुर्लभ भोगा ।
दुई सुत सुन्दर सीता जाए । लवकुस वेद पुरानन गाए ।
दोउ बिजई विनई गुन मन्दिर । हरि प्रतिविम्ब मनहुं अति सुन्दर
दुइ दुइ सुत सब भ्रातन केरे । भए रूप गुन सील घनेरे ।

दो० ग्यान गिरा गोतीत अज, माया मन गुन पार ।
सोइ सच्चिदानन्द घन, कर नर चरित उदार ॥

हे उमा भगवान राम के दर्शनार्थ सनकादि ऋषि आये जो—

ब्रह्मानन्द सदा लयलीना । देखत बालक बहु कालीना ।
रूपधरे जनु चारिउ वेदा । समदरसी मुनि विगत विभेदा ।
आसा बसन व्यसन यह तिन्हहीं । रघुपति चरित होइतहँ सुनहीं

उनका भगवान ने बहुत आदर किया:—

कर गहि प्रभु मुनिवर बैठारे । परम मनोहर बचन उचारे ।
आज धन्य मैं धन्य मुनीसा । तुम्हरे दरस जाहिं अघखीसा ।
बड़े भाग्य पाइब सत्संगा । बिनहिं प्रयास होहिं भव भंगा ।
दो० संत संग अपवर्ग कर, कामी भव कर पंथ ।
कहहिं संत कवि कोविद, श्रुति पुरान सद्ग्रंथ ॥
सुनि प्रभुवचन हरषिमुनिचारी । पुलकिततन अस्तुति अनुसारी ।
जय भगवंत अनंत अनामय । अनघ अनेक एककरुनामय ।
जय निर्गुन जय जय गुनसागर । सुख मन्दिर सुन्दर अतिनागर
तग्य कृतग्य अग्यता भंजन । नाम अनेक अनाम निरंजन ।
सर्व सर्वगत सर्वउरालय । वससि सदा हम कहुं परि पालय ।
देहु भगति रघुपति अति पावनि । त्रिविधि ताप भवदाप नसावनि

वशिष्ठजी भी भगवान राम की स्तुति करके अन्त में अनन्य भक्ति ही मागते हैं। यथा:—

जप तपनियम जोग निजधर्मा । श्रुति संभव नाना शुभ कर्मा ।
ज्ञान दया दम तीरथ मज्जन । जंह लगि धर्म कहत श्रुतिसज्जन ।
आगम निगम पुरान अनेका । पढ़े सुने कर फल प्रभु एका ।

तब पद पंकज प्रीति निरंतर । सब साधन कर यह फल सुन्दर ।
प्रेम भगति जल बिनु रघुराई । अभिअंतर मल कबहुँ न जाई ।
सोइ सर्वज्ञ तज्ञ सोइ पंडित सोइ गुन गृह बिज्ञान अखंडित ।
दच्छ सकल लच्छन जुतसोई । जाके पद सरोज रति होई ।

दो० नाथ एक वर मागऊँ, राम कृपा करिदेहु ।
जन्म जन्म प्रभुपद कमल, कबहुं घटै जनि नेहु ॥

हे उमा ! भरतजी भी समय पाकर भगवान राम से सन्तों के लक्षण सुनने के लिए प्रार्थना करने लगे ।

करउँ कृपानिधि एक ढिठाई । मैं सेवक तुम्ह जन सुखदाई ।
संतन्ह कै महिमा रघुराई । बहु विधि वेद पुरानन्ह गाई ।
श्रीमुख तुम्ह पुनिकीन्ह बड़ाई । तिन्हपर प्रभुहि प्रीति अधिकाई ।
सुना चहहुँ प्रभु तिन्ह कर लच्छन । कृपासिन्धु गुन ज्ञान बिचच्छन
संत असंत भेद बिलगाई । प्रनत पाल मोहि कहहु बुझाई ।

भरतजी के प्रश्न करने पर भगवान राम ने जो सन्त और असन्त के लक्षण बतलाए हैं उनको श्रवण करो ।

संतन के लच्छन सुन भ्राता । अगनित श्रुति पुरान बिख्यात ।
संत असंतन्हि कै असि करनी । जिमि कुठार चंदन आचरनी ।
काटइ परस मलय सुनु भाई । निज गुन देइ सुगंध बसाई ।

दो० ताते सुर सीसन्ह चढ़त, जग वल्लभ श्रीखंड ।
अनल दाहि पीटत घनहिं, परस बदन यह दंड ॥

विषय अलंपट सीलगुनाकर । पर दुख दुख सुखसुखदेखे पर ।
सम अभूतरिपु विमद विरागी । लोभामर्ष हरष भय त्यागी ।
कोमलचित दीनन्ह पर दाया । मन वच क्रम मम भगतिअमाया
सबहि मानप्रद आपु अमानी । भरतप्रान सम ममते प्रानी ।
बिगत काम ममनाम परायन । सांति विरति बिनती मुदितायन
सीतलता सरलता मयत्री । द्विज पद प्रीति धर्म जनयत्री ।
ए सब लच्छन बसहिं जासु उर । जानेहु तात संत संततफुर ।
सम दम नियम नीति नहिं डोलहिं। परुष वचनकबहूंनहिंबोलहिं

दो० निंदा अस्तुति उभय सम, ममता मम पद कंज ।
ते सज्जन मम प्रानप्रिय, गुन मंदिर सुख पुंज ॥

सुनहु असंतन्ह केर सुभाऊ । भूलेहुं संगति करिअ न काऊ ।
तिन्ह कर संग सदा दुखदायी । जिमि कपिलहि घालइ हरहाई ।
खलन्ह हृदय अति ताप बिसेषी । जरहिं सदा पर संपति देखी ।
जहँ कहुं निंदा सुनहिं पराई । हरषहिं मनहुँ परी निधि पाई ।
काम क्रोध मद लोभ परायन । निर्दय कपटी कुटिल मलायन ।
वयर अकारन सब काहू सों । जोकर हित अनहित ताहू सों ।
झूठइ लेना झूठइ देना । झूठइ भोजन झूठ चबेना ।

दो० पर द्रोही परदार रत, परधन पर अपवाद ।
ते नर पाँवर पाप मय, देह धरे मनुजाद ॥

लोभइ ओढन लोभइ डासन। सिस्नोदर पर जमपुर त्रास न।
काहू की जौं सुनहि बड़ाई। स्वासलेहिं जनु जूड़ी आई।
जब काहू कै देखहिं बिपती। सुखी भये मानहुँ जग नृपती।
स्वारथ रत परिवार बिरोधी। लंपट काम लोभ अति क्रोधी।
मातु पिता गुरु बिप्रन मानहिं। आपु गये अरु घालहिं आनहिं।
करहि मोह बस द्रोह परावा। संत संग हरि कथा न भावा।
अवगुन सिन्धु मंदमति कामी। वेद बिदूषक परधन स्वामी॥
बिप्र द्रोह पर द्रोह विसेषा। दंभ कपट जिय धरे सुबेषा

दो० ऐसे अधम मनुज खल, कृतजुग त्रेता नाहिं।
द्वापर कछुक वृन्द बहु, होइहहिं कलिजुग माहिं।

परहित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाहि।
निनय सकल पुरान वेदकर। कहेउँ तात जानहिं कोविद नर।
नर शरीर धरि जेपर पीरा। करहिं ते सहहिं महाभव भीरा।
करहिं मोह बस नर अघ नाना। स्वारथ रत परलोक नसाना।
काल रूप तिन्ह कहँ मैं भ्राता। सुभ अरु असुभ कर्म फलदाता।
अस विचारि जे परम सयाने। भजहिं मोहि संसृत दुख जाने
त्यागहिं कर्म शुभाशुभ दायक। भजहिंमोहि सुरनर मुनि नायक।
संत असंतन्ह के गुन भाषे। ते न परहिं भव जिन्ह लखिराखे।

दो० सुनहु तात माया कृत, गुन अरु दोष अनेक।
गुन यह उभय न देखिअहिं, देखिय सो अविवेक॥

तात्पर्य यह है कि असंत के अन्तःकरण में तमोगुण राजा और रजोगुण मंत्री होता है तथा सत्वगुण मृतक के समान होता है। इस कारण असंत का अन्तःकरण धर्मभक्ति ज्ञान से शून्य और मल विक्षेप आवरण से युक्त होता है। असंत का हृदय सर्वात्मा सर्वाधिष्ठान सच्चिदानन्द राम के ज्ञान से उसी प्रकार शून्य होता है जैसे निद्रा में स्वप्न देखने वाला जीव जाग्रत जगत के ज्ञान से नितान्त शून्य हो जाता है। असंत के शरीर मन वाणी की समस्त क्रियाएँ शास्त्र से विपरीत तथा परिणाम में दुखदायक होती हैं। सन्त का हृदय सत्वगुण प्रधान होने से भक्ति वैराग्य ज्ञान से सम्पन्न होता है और मल विक्षेप आवरण से रहित होता है जैसे जाग्रत पुरुष की अहंता ममता जाग्रत जगतमें ही होती है स्वप्न जगत में नहीं होती उसी प्रकार संतकी अहंता ममता भगवान राम के परमार्थ स्वरूप में ही होती है जो सर्व जीवों की उसी प्रकार आत्मा हैं जैसे सर्व घटाकाशों की आत्मा महाकाश है और जो सर्व स्थूल सूक्ष्म कारण प्रपंच का उसी प्रकार अधिष्ठान है जैसे रज्जुसर्प का अधिष्ठान रज्जु होता है। सन्त को देह दृश्य में उसी प्रकार अहंता ममता नहीं होती जैसे अज्ञानी को भी अपने शरीर की छायामें अहंता ममता नहीं होती क्योंकि संत की दृष्टि में छाया के समान देह दृश्य अधिष्टान सच्चिदानन्द राम से भिन्नअसत है अर्थात प्रतीत होने पर भी परमार्थतः कुछ नहीं हैं।

सन्त अपनी आत्मा को ही नाना जीवों के स्वरुप में उसी प्रकार देखता है जैसे एकही सर्य नाना प्रतिबिम्बों के रूप में प्रतीत हुआ करता है। अतः सर्व जीवों की आत्मा मैं ही हूँ ऐसा,जानने वाला संत सर्व के हित में निष्काम निराभिमान होकर रत रहता है। संत की दृष्टि में तमो गुण और रजो गुण के कार्य काम क्रोधादि दोष तथा सत्वगुण के काय वैराग्य विवेकादि गुण भीस्वप्न वत माया मात्र हैं। अतः संत अपने निर्गुण सच्चिदानन्द स्वरुप में परमार्थ दृष्टि से

सत्व रज तम तीनों गुणों का अत्य ताभाव होने से त्रिगुणात्मक गुण व दोषों का भी सूर्य में अन्धकार वत अत्यन्ताभाव देखता है और व्यावहारिक दृष्टि से गुण दोषों दोनों को अध्यस्त भ्रममात्र जानता है। दोषों को ८४ लक्षयोनियों में भटकानेवाला विसम्वादी भ्रम और गुणों को ज्ञान द्वारा मोक्ष में सहायक होने से सम्वादी भ्रम जानता है। जैसे काँटे सेकाँटा निकाल कर दोनों काँटों का त्याग कर दिया जाता है उसी प्रकार विसम्वादी भ्रम को सन्वादी भ्रम द्वारा दूरकरके सम्वादी भ्रमरूपी ज्ञान वैराग्य सन्तोषादि गुणों का अभिमान भी त्याग कर दिया जाता है क्योंकिः—

समरथ कहुँ नहिं दोष गोसाईं। रवि पावक सुधसरिकी नाईं ॥

अतः गुण व दोष दोनों को कल्पित निश्चय करना संत का अन्तरंग लक्षण है।

उमाकहिउँ सब कथा सुहाई। जो भुसुंडि खग पतिहि सुनाई।
कछुक रामगुन कहेउँ बखानी। अब कर कहौं सो कहहु बखानी।

यज्ञ वल्क्य जी कहते हैं कि हे भरद्वाज !

सुनि शुभकथा उमा हरषानी। बोलीअति विनात मृदुबानी।
धन्य धन्य मैं धन्य पुरारी। सुनेउँ राम गुन भव भय हारी।

दो० तुम्हरी कृपा कृपायतन, अब कृतकृत्य न मोह।
जानेउँ राम प्रताप प्रभु, चिदानन्द सन्दोह ॥
नाथ तवानन ससि स्रवत, कथा सुधा रघुवीर।
श्रवन पटन्हि मनपान करि, नहिं अघात मतिधीरि।

तात्पर्य यह है कि भगवान शंकर ने जब पारवती जी से पूछा कि अब और क्या सुननां और जानना चाहती हो तब उनका हृदय परमानन्द से भर गया और वे कृतकृत्यत होकर गदगद वाणी से कृतकृत्यता प्रकट करते हुए शंकर भगवान को धन्यवाद देने लगीं. तत्पश्चात अपनी निष्ठा का वर्णन करते हुए कहा कि मुझे अब कुछ जानना और सुनना शेष नहीं रहा। जैसे निद्रा में स्वप्न देखने वाले को जगा देने से उसका स्वप्न भ्रम दूर हो जाता है उसी प्रकार हे प्राणेश ! मैं मोहनिद्रा में द्वैत भ्रम देख रही थी परन्तु आपकी कृपादृष्टि से मेरा मोह नाश होगया तथा मोह जनित भेद भ्रम निवृत्ति होगया और मैं कृतार्थ होगई ! जैसे अमृत को पीकर अमर होने के पश्चात भी अमृतपीने से तृप्ति नहीं होती उसी प्रकार आपके वचनमृत क पा करके कृत र्थ होने के पश्चात भी आपके वचनामृत से तृप्तिनहीं हो रही है। अब कृपया यह बतलाइये कि: -

नर सहस्र महँ सुनहु पुरारी। कोउ एक होइ धर्म ब्रत धारी।
धर्म सील कोटिक महँ कोई। विषय बिमुख विराग रत होई।
कोटि विरक्त मध्य श्रुति कहई। सम्यक ग्यान सक्रत कोउ लहई।
ग्यानवंत कोटिक महँ कोऊ। जीवन्मुक्त सक्रत जग सोऊ।
तिन्ह सहस्र महुं सब सुखखानी। दुर्लभ ब्रह्मनिरत विज्ञानी।
धर्मशील विरक्त अरु ज्ञानी। जीवन्मुक्त ब्रह्म पर प्रानी।
सबते सो दुर्लभ सर राया। राम भगति रत गत मद माया।

तात्पर्य यह है कि जो ज्ञान विज्ञान का भी अभिमान यह जानकर वाधक रसकता हो कि ज्ञान विज्ञान तथा ज्ञान विज्ञ न जन्य मोक्ष की प्राप्ति कल्पित चिदाभास केअन्तर्गत हैं, सर्वात्मा सच्चिदानन्द राम से

भिन्न मृगजल और छाया की भाँति चिदाभास प्रतीत होने पर भी कुछ नहीं वह अपने सहित जगत को निर्मूल करदेने वाला भक्त अत्यन्त दुर्लभ है।

सो हरि भगति काग किमि पाई। बिश्वनाथ मोहि कहहि बुझाई

दो० राम परायन ग्यान रत, गुनागार मतिधीर।
नाथ कहहु केहि कारन, पायउ काक सरीर।

यह प्रभु चरित पबित्र सुहावा। कहहु कृपाल काग कहँ पावा।
तुम केहि भाँति सुना मद नारी। कहहु मोहिअति कौतुक भारी
गरुड़ महा ग्यान गुनरासी। हरि सेवक अति निकट निवासी।
तेहि केहि हेतु काग सनजाई। सुनी कथा मुनि निकर बिहाई।
कहहु कवन विधि भा सबादा। दोउ हरि भगत काग उरगादा।

महात्मा तुलसी दास जी अपने श्रोता मन सेकहते हैं कि यज्ञवल्क्य जी भरद्वाज जो को समझाते हैं कि इसप्रकार के पारवती जी के प्रश्न सुनकर शंकर भगवा नबोलेः—

धन्य सती पावन मति तोरी। रघुपति चरन प्रीति नहिं थोरी।
सुनहु परम पुनीत इतिहासा। जोसुनि सकल लोक भ्रमनासा।
उपजइ राम चरन बिस्वासा। भव निधि तरनर बिनहिं प्रयासा।

दो० ऐसिअ प्रश्न विहंग पति, कीन्हि काग सन जाइ।
सो सब सादर कहिहउँ, सुनहु उमा मन लाइ॥

मैं जिमि कथा सुनी भव मोचनि। सो प्रसंग सुनु सुमुखि सुलोचनि

हे उमा ! जब तुमने सती का शरीर अपमान से दुखी होकर त्याग दिया तब मैं नीलगिरि पर विचरता हुआ पहुँचाः—

तहँ बसि हरिहि भजइ जिमि कागा । सो सुनु उमा सहित अनुराग
पीपर तरु तर ध्यान सो धरई । जाप जग्य पाकरि तर करई ।
आँब छाँह कर मानस पूजा । तजि हरि भजन काज नहिं दूजा ।
बर तर कहहरि कथा प्रसंगा । आवहिं सुनहिं अनेक विहंगा ।
जब मैं जाइ सो कौतुक देखा । उर उपजा आनंद विसेषा ।

दो० तब कछु काल मराल तन, धरि तहं कीन्ह निवास ।
सादर सुनि रघुपति गुन, पुनि आयउँ कैलास ॥

अब कागभुसुंडि के पास गरुड़ के जाने का कारण सुनो ।

जब रघुनाथ कीन्हि रन क्रीड़ा । समुझत चरित होति मोहि ब्रीड़ा
इंद्रजीत कर आपु बँधायो । तब नारदमुनि गरुड़ पठायो ।
बंधन काटि गयो उरगादा । उपजा हृदय प्रचंड विषादा ।
व्यापक ब्रह्म बिरज बागीसा । माया मोह पार परमीसा ।
सो अवतार सुनेउँ जगमाही । देखेउँ सो प्रभाव कछु नाहीं ।
खेद खिन्न मन तर्क बढ़ाई । भयउ मोह बस तुम्हरिहिं नाईं ।

हे उमा ! गरुड़ने नारदजी के पास जाकर अपनी संशय सुनाई । तब नारदजी ने गरुड़ को इस महामोह के निवारणार्थ ब्रह्माजी के पास भेजा । गरुड़ की शंका सुनकर ब्रह्माजी कहने लगेः—

हरि माया कर अमित प्रभावा ।
विपुल बार जेहि मोहि नचावा ॥

अगजगमय जग मम उपराजा । नहिं आचरज मोह खगराजा ।

हे उमा ! ऐसा कहकर ब्रह्माजी ने गरुड़ को मेरे पास भेज दिया ।

सुनि ता करि बिनती मृदुबानी । प्रेम सहित मैं कहेउँ भवानी ।
मिलेहु गरुड़ मारग महँ मोही । कवन भाँति समुझावौं तोही ।
तबहिं होइ सब संसय भंगा जब बहु काल करिअ सतसंगा

हे गरुड़ नीलगिरि पर काकभुसुंडिजी निरंतर भक्ति वैराग्यज्ञान से भरा हुआ भगवत चरित्र सुनाया करते हैं ।

जाइ सुनहु तहँ हरि गुन भूरी । होइहि मोह जनित दुख दूरी ।
ताते उमा न मैं समझावा । रघुपति कृपा मरम मैं पावा ।
होइहि कीन्ह कबहुं अभिमाना । सो खोवै चह कृपानिधाना ।
कछु तेहि ते पुनिमैंनहि राखा । समुझइ खग-खग ही कै भाषा
कथा अरंभ करै सोइ चाहा । तेही समय गयउ खगनाहा ।
आवत देखि सकल खग राजा । हरषेउ वायस सहित समाजा ।
अति आदर खगपतिकर कीन्हा । स्वागत पूछि सुआसन दीन्हा

हे उमा ! गरुड़ने कागभुसुंडि से कहाः—

सुनहु तात जेहि कारन आयउँ ' सो सबभयउ दरस तवपायउँ
देखि परम पावन तव आश्रम । गयउ मोह संसय नाना भ्रम
अब श्रीराम कथा अति पावनि । सदा सुखददुखपुंज नसावनि
सादर तात सुनावहु मोही । बार-बार बिनवउँ प्रभु तोही ।

गरुड़ की इस प्रकार भक्ति पूर्ण प्रार्थना सुनकर कागभुसुंडिने गरुड़ को पूरा श्री रामचरित आदि से अन्ततक सना दिया। सम्पूर्ण श्री रामचरित्र सुनकर गरुड़ कृतकृत्य होकर कहने लगेः—

संत विसुद्ध मिलहि परि तेही। चितवहिं रामकृपा करिजे ही।
राम कृपा तव दर्शन भयऊ। तव प्रसाद सब संशय गयऊ।

दो० श्रोता समति सुशील सुचि, कथा रसिक हरिदास।
पाइ उमा अति गोप्यमत, सज्जन करहिं प्रकास॥

तत्पश्चात कागभुसुडिजी गरुड़ से कहने लगेः—

तुम्ह निज मोह कही खग साईं। सो नहिं कछुआचरज गोसाईं
नारद भव विरंचि सनकादी। जे मुनि नायक आतम वादी
मोह न अंध कीन्ह केहि केही। को जग काम नचावन जेही
तृस्ना केहि न कीन्ह चौराहा। केहिकर हृदय क्रोध नहिं दाहा।
गुन कृत सन्यपात नहिं केही। कोउ न मान मद तजेउनि वेही
जोवनज्वरकेहिनहिं बलकावा। ममता केहिकर जस न नसावा
मच्छर काहि कलंक न लावा। काहि न सोक समीर डोलावा
चिंता साँपिनिको नहिं खाया। को जग जाहि न व्यापी माया
कीट गनोरथ दारु सरीरा। जेहि न लाग घुन को असधीरा।
सुतबित लोक ईषना तीनी। केहिकै मति इन्ह कृत न मलीनी।
यह सब मायाकर परिवारा। प्रबल अमिति को बरनै पारा।
सिव चतुरानन जाहिं डेराहीं। अपर जीव केहि लेखे मांहीं।

दो० व्यापि रहेउ संसार महुं, माया कटक प्रचंड।
सेनापति कामादि भट, दंभ कपट पाखंड॥
सो दासी रघुवीर की, समुझे मिथ्या सोपि।
छूटन राम कृपा बिनु, नाथ कहउँ पद रोपि॥

तात्पर्य यह है कि यद्यपि स्वप्न भ्रम के समान माया और मायाका परिवार भ्रममात्र तुच्छ है परन्तु जैसे जाग्रत की शरण प्राप्त हुए विना निद्रा पर्यन्त स्वप्न से छुटकारा असम्भव है उसी प्रकार महाजाग्रत स्वरूप सच्चिदानन्द सर्वाधिष्ठान सर्वात्मा राम की शरण प्राप्त हुए विना भ्रम मात्र स्वप्नवत होने पर भी माया से छूटना असम्भव है। जैसे माता अपने बच्चों को खिलौने देकर बहका देती है। परन्तु जो चतुर बालक खिलौनो को स्वीकार नहीं करता और माता की गोद के लिए व्याकुल हो जाता है उसको माता गोद में उठा लेती है और खिलौने भी खेलने को देती है। ठीक उसी प्रकार परमपिता सच्चिदानन्द रामने भी अपनी अनन्य भक्ति को छोड़ कर कागभुसडिको सब कुछ देने का प्रलोभन दिया तब हे उमा! कागभुसुडिजी ने कहने लगे:–

प्रभु कह देन सकल सुख सही। भगति आपनी देन न कही।
भगति हीन गुन सबसुख ऐसे। लवन विना बहु व्यंजन जैसे।
भजन हीन सुख कवने काजा। असविचारि बोले खग राजा।
जौं प्रभु होइ प्रसन्न वर देहू। मोपर करहु कृपा अरु नेहू
मन भावत वर मागउँ स्वामी। तुम्ह उदार उर अंतरजामी।

दो० अविरल भगति बिशुद्ध तव, श्रुति पुरान जो गाव।
जेहि खोजत योगीश मुनि श्रुति पुरान जो गाव॥

भगत कल्पतरु प्रनतहित, कृपा सिंधु सुख धाम।
सोइ निज भगति मोहि प्रभु, देहु दया करि राम॥

एवमस्तु कहि रघुकुल नायक। बोले वचन परम सुखदायक॥
सुनु वायस तैं सहज सयाना। काहे न मागसि अस वरदाना॥
सब सुखखानि भगति तैं माँगी। नहिं जग कोउ तोहि सम बड़भागी।
सुन विहंग प्रसाद अब मोरे। सब सुभ गुन बसिहहिं उर तोरे।
भगति ज्ञान-विज्ञान विरागा। जोग चरित्र रहस्य विभागा।
जानब तैं सबही कर भेदा। मम प्रसाद नहिं साधन खेदा।

दो० माया संभव भ्रम सब, अब न व्यापिहहिं तोहि।
जानेसि ब्रह्म अनादिअज, अगुन गुनाकर मोहि।
मोहि भगत प्रिय संतत, अस विचारि सुन काग।
काय वचन मन मम पद, करेसु अचल अनुराग।

भगति हीन विरंचि किन होई। सब जीवहु सम प्रिय मोहि सोई।
भगति वंत अति नीचउ प्रानी। मोहि प्रान प्रिय असि मम बानी।
अखिल विश्व यह मोर उपाया। सब पर मोहि बराबर दाया।
तिन्ह महँ जो परिहरि मद माया। भजै मोहि मन वच अरु काया।

दो० पुरुष नपुंसक नारि वा, जीव चराचर कोई।
सर्व भाव भज कपट तजि, मोहिं परम प्रिय सोई।

निज सिद्धान्त सुनावउँ तोही। सुनु मन धरु सब तजि भजु मोही।

कबहूँ काल न व्यापहि तोही। सुमिरेसु भजेसु निरंतर मोही।

हे गरुड़ जी !

प्रभु बचनामृतसुनि न अघाऊँ। तनु पुलकित मन अति हरषाऊँ।
सोसुख जानइ मन अरुकाना। नहिं रसना पहिं जाई बखाना।
तब ते मोहि न व्यापी माया। जब ते रघुनायक अपनाया।
एहि तन राम भगति मैं पाई। ताते मोहि ममता अधिकाई।

दो० पाट कीट ते होइ, तेहि ते पाटंबर रुचिर।
कृमि पालइ सब कोई, परम अपावन प्रान सम।

स्वारथ साँच जीव कहुं एहा। मन क्रम बचन राम पद नेहा।
सोइ पावन सोइसुभग शरीरा। जो तनु पाइ भजिअ रघुबीरा।
राम बिमुख लहि बिधि सम देही। कबि कोविदन प्रसंसहिं तेही।
देखेउँ करि सबकरम गुसाईं। सुखी न भयउँ अबहिं कि नाईं।

दो० राकापति षोड़स उअहिं। तारागन समुदाइ।
सकल गिरिन्हदव लाइअ। रवि बिनु राति न जाइ।

ऐसेहिं हरि बिनु भजन खगेसा। मिटइ न जीवन्ह केरकलेसा
शिव अजसुक सनकादिक नारद। जे मुनि ब्रह्म बिचार विशारद।
सब कर मतखग नायक एहा। करिअ राम पद पंकज नेहा।
श्रुति पुरान सब ग्रंथ कहाहीं। रघुपति भगति बिना सुखनाहीं।
कमठ पीठ जामहिं बरु बारा। वंध्यासुत बरु काहुहि मारा।

फूलहिं नभ बरुबहु बिधि फूला। जीवन लहसुख हरि प्रतिकूला।
तृषा जाइ बरु मृगजल पाना। बरु जामहिं सस सीस बिषाना।
अन्धकार बरु रविहि नसावै। राम विमुख न जीव सुख पावै।
हिम ते अनल प्रगट बरु होई। विमुख राम सुख पावन कोई।

दो० बारि मथे घृत होइ बरु, सिकता ते बरु तेल।
बिनु हरिभजन न भव तरिअ, यह सिद्धांत अपेल।
हरि माया कृत दोष गुन, बिनु हरि भजन न जाहिं।
भजियराम तजि कामसब, अस विचारि मन माहिं।

हे गरुड़ जी ! एक बार कलियुग में मैंने शूद्र शरीर प्राप्त किया।

दो० मैं खल मल संकुल मति, नीच जाति बस मोह।
हरि जन द्विज देखे जरउं, करउँ बिस्नु कर द्रोह।

सो० गुरु नित मोहि प्रबोध, दुखित देखि अचारन मम।
मोहि उपजइ अति क्रोध दंभिहि, नीति कि भावई !

हे उमा ! एक बार गुरु का अपमान करने पर मैंने शुद्र शरीर धारी कागभुसंडि को शाप दे दिया कि एक हजार जन्मों तक तिरियक् योनियों को प्राप्त हो परन्तु उसके गुरु की प्रार्थना से मैंने उसको वर भी दिया कि:—

जन्मत मरत दुसह दुख होई। एहि स्वल्पउ नहिं व्यापिहि सोई।
कवनेउँ जन्म मिटिहि नहिं ज्ञाना। सुनहि शूद्र मम बचन प्रवाना।

अन्तिम शरीर उसको ब्राह्मण का मिला उस ब्राह्मण शरीर का

चरित्र वह गरुड़ को सुनाते हुए बोला कि मेरा मन पढ़ने लिखने व खेलने में नहीं लगता था।

मन ते सकल बासना भागी। केवल राम चरन लय लागी।
जहँ-तहँ बिपिन मुनीस्वर पावउँ। आश्रम जाइ-जाइ सिर नावउँ।
बूझउँ तिन्हहि राम गुन गाहा। कहहिं सुनउँ हरषित खगनाहा।
छूटी त्रिविधि ईषना गाढ़ी। एक लालसा उर अति बाढ़ी।
राम चरन बारिज जब देखौं। तब निज जन्म सफल करि लेखौं।
जेहि पूछउँ सोइ मुनि अस कहई। ईस्वर सर्व भूत मय अहई।
निर्गुन मत नहि मोहि सोहाई। सगुन ब्रह्म रति उर अधिकाई।

दो० मेरु सिखर बट छाया, मुनि लोमस आसीन।
देखि चरन सिर नायउँ, बचन कहेउँ अति दीन॥

ब्रह्मज्ञान रत मुनि बिज्ञानी। मोहि परम अधिकारी जानी।
लागे करन ब्रह्म उपदेसा। अज अद्वैत अगुन हृदयेसा।
अकल अनीह अनाम अरुपा। अनुभव गम्य अखंड अनूपा।
मन गोतीत अमल अबिनासी। निर्विकार निरवधि सुखरासी।
सो तैं ताहि तोहि नहिं भेदा। बारि बीचि इव गावहिं बेदा।

जैसे प्यासे को ही जल पीने में स्वाद आता है उसी प्रकार मुमुक्षु को ही वेदों के गूढ़ सिद्धान्त जीव ब्रह्म की एकता का श्रवण करने में अत्यन्त रुचि होती है। लोमश ऋषि कागभुसुंडी को ब्राह्मण शरीर में उत्तम मुमुक्षु समझकर जीव ब्रह्म की एकता का उपदेश करने लगे। परन्तु जैसे जो प्यासा नहीं है उसको जल पीने में रुचि नहीं होती

उसी प्रकार मुमुक्षुता का अभाव होने के कारण लोमश ऋषि का उपदेश अच्छा नहीं लगा और मन में विचारने लगे कि महात्मा जी ने जीव ब्रह्म की एकता में जो जल और तरंग का दृष्टान्त दिया है वह विषम है क्योंकि तरंग परिच्छिन्न और नाना हैं और समुद्र जल एक और व्यापक है। अतः तरंग का समुद्र होना असम्भव है। उसी प्रकार मायावश परिच्छिन्न जीव का ब्रह्म होना असम्भव है। मुमुक्षता न होने के कारण वह यह विचार न कर सके कि जैसे तरंग का लक्ष्यार्थ तरंग जल समुद्र के लक्ष्यार्थ समुद्र जल से भिन्न नहीं उसी प्रकार जीव का लक्ष्यार्थ घटाकाशवत कूटस्थ ईश्वर के लक्ष्यार्थ महाकाश वत ब्रह्म से भिन्न नहीं वल्कि सदा से अभिन्न है और सदा अभिन्न रहेगा, केवल उपाधि कृत मिथ्या भेद प्रतीत होता है। व्यष्टि स्थूल सूक्ष्म कारण शरीर रूप उपाधि जीव की और समष्टि स्थूल सूक्ष्म कारण शरीर रूप उपाधि ईश्वर की वाध करने पर जैसे घट और मठ के बाध करने पर घटा काश और महाकाश में भेद नहीं हो सकता केवल आकाश मात्र शेष रहता है उसी प्रकार जीव ईश्वर में भेद नहीं हो सकता केवल चेतन मात्र शेष रहता है। ऐसा विचार न करके उन्होंने लोमश ऋषि से कहा कि—

सोइ उपदेश कहहु करिदाया। निज नयनन्हि देखौं रघुराया।
भरि लोचन विलोकिअवधेशा। तब सुनिहउँ निर्गुन उपदेशा
मुनि पुनि कहि हरिकथा अनूपा। खंडिसगुन मत अगुननिरूपा

सगुण मत का खंडन सुनकर हे गरुड़ जी—

तव मैं निर्गुन मत कर दूरी। सगुन निरुपउँ करि हठ भूरी।

तात्पर्य यह है कि शिष्य गुरु संवाद समाप्त होकर जल्प प्रारम्भ हो गया।

स्थूल बुद्धि के कारण पूर्व पक्ष मान लेने पर जल्प तथा वितंडा चल पड़ता है। तात्पर्य को न समझ सकने के कारण आरोप को पुष्ट किया जाता है। हे गरुड़ जी !

उत्तर प्रति उत्तर मैं कीन्हा। मुनि तन भए क्रोध के चीन्हा।
सुनु प्रभु बहुत अवग्या किए। उपज क्रोध ग्यानिन्हके हिए।
अति संघरषन जौंकर कोई। अनल प्रगट चंदन ते होई।

दो० वारम्बार सकोपि मुनि, करइ निरूपन ज्ञान।
मैं अपने मन बैठ तब, करउँ विविधि अनुमान ॥

दो० क्रोध कि द्वैतबुद्धि बिनु, द्वैत कि बिनु अज्ञान।
माया वस परिछिन्न जड़, जीव कि ईस समान ॥

अर्थात उस समय मैं जीव और ईश्वर के वाच्यार्थ और लक्ष्याथ को नहीं समझता था इस कारण मुझे जीव ईश्वर की एकता में अश्रद्धा थी। अतः—

पुनि पुनि सगुन पच्छ मैं रोपा। तब मुनि बोलेउ बचन सकोपा
मूढ़ परम सिख देउँ न मानसि। उत्तर प्रति उत्तर बहु आनसि
सत्य बचन बिस्वासन करही। वाइसइव सब ही ते डर ही।
सठ स्वपच्छ तव हृदय बिसाला। सपदि होहि पच्छी चंडाला।
लीन्ह श्राप मैं सीस चढ़ाई। नहि कछु भय न दीनता आई।

क्योंकि—

सुन खगेस नहिं कछु रिषि दूषन। उर प्रेरक रघुवंस विभूषन।

तात्पर्य यह है कर्मानुसार ईश्वर फल दाता है और लोमष ऋषि अथवा

अन्य कोई निमित्त मात्र हैं। मैं शूद्र शरीर में ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मणों का निन्दक रह चुका था। उसी पाप संस्कार के उदय हो जाने से भगवत प्रेरणा द्वारा लामष ऋषि ने मुझे काग हो जानेका शाप दे दिया क्योंकि,—

द्विज निन्दक बहुनरक भोग करि। जगजनमइवायससरीरधरि।
मन वच क्रम मोहि निज जनजाना। मुनि मति पुनिफेरीभगवाना॥
मम परितोष विविधि विधिकीन्हा। हरषित राममंत्र तब दीन्हा।
बालक रूप रामकर ध्याना। कहेउ मोहि मुनि कृपा निधाना॥
मुनि मोहि कछुक कालतहँ राखा। रामचरित मानस तब भाषा
निज कर कमल परसि मम सीसा। हरषित आसिष दीन्हमुनीसा
राम भगति अविरल उर तोरे। बसिहि सदा प्रसाद अब मोरे॥

दो० सदा राम प्रिय होहु तुम, सुभ गुन भवन अमान।
काम रूप इच्छा मरन, ज्ञान विराग निधान॥
जेहि आश्रम तुम्ह बसब पुनि, सुमिरत श्री भगवंत।
व्यापिहि तहँ न अविद्या, जोजन एक प्रजंत॥

जो इच्छा करिहहु मन माहीं। हरि प्रसाद कछु दुर्लभ नाहीं।
करि विनती मुनि आयसु पाई। पद सरोज पुनि पुनि सिरु नाई
हरष सहित एहि आश्रम आयउँ। प्रभुप्रसाद दुर्लभवर पायउँ॥

हे गरुड़जी !

कथा सकल मैं तुम्हहि सुनाई। काग देह जेहि कारन पाई।

तत्पश्चात गरुड़जीने पूछा—

ग्यानहि भगतिहि अंतर केता। सकलकहहु प्रभु कृपानिकेता।

इस प्रश्न का समाधान करते हुए कागभुसुंडी जी बोले—

भगतिहि ग्यानहिं नहिं कछु भेदा । उभय हरहिं भव संभवखेदा।
नाथ मुनीस कहहि कछु अन्तर । सावधान सोउ सुनु विहंगवर
ज्ञान विराग जोग विज्ञाना । ए सब पुरुष सुनहु हरिजाना ।
माया भगति सुनहु तुम्ह दोऊ । नारि वर्ग जानइ सब कोऊ ॥
मोह न नारि नारि के रूपा । पन्नगारि यह रीति अनूपा ॥
भगतिहि सानुकूल रघुराया । ताते तेहि डरपति अति माया ।

तात्पर्य यह है कि जबतक 'मैं अरु मोर तोर तैं माया' अर्थात अहंता ममता का निवास हृदय में है तब तक सच्चिदानन्द राम के निर्गुण स्वरूप का आत्मा रूप से साक्षात्कार उसी प्रकार असम्भव है जैसे सोये हुए पुरुष को जाग्रत जगत का दर्शन असम्भव है। अतः देह में अभिमान और धन पुत्रादि में ममत्व भगवान राम के सगुणरूप की भक्ति द्वारा नाश कर लेना चाहिये क्योंकि जैसे स्वप्न का रोग स्वप्न की औषधि से ही दूर हो सकता है इसी प्रकार सगुण देह दृश्यमें अहंता ममताका नाश सगुण रामकी भक्ति से हो सकता है। जब अन्तःकरण अहंता ममता रूप विपरीतभावना से रहित हो जाता है तब जीव और ईश्वर के निर्गुण स्वरूप का विचार करके अभेद निश्चय करने में साधक समर्थ होता है। जो जीव अपने को सगुण देहवान जानता है वह सगुण राम की भेद भक्ति द्वारा ही अपनी उन्नति कर सकता है। जब वह अपने को निर्गुण निराकार अनुभव करेगा तब भगवान रामके निर्गुण स्वरूप का भी चिन्तवन करने में समर्थ हो सकता है और जैसे अज्ञान काल में अनात्मा देहों में सहज आत्म बुद्धि थी उसी प्रकार अपना और ईश्वर का निर्गुण स्वरूप ज्ञात होने पर विपरीत

भावना से रहित जीव सच्चिदानन्द राम के निर्गुण निराकार स्वरूप में सहज अभिमान कर सकता है जिसको अभेद भक्ति या परा भक्ति भी कहते हैं।

अतः भक्ति शून्य शास्त्री ज्ञानसे जीवका कल्याण होनाअसम्भव है। इसी कारण स्वयं भगवान का कहना है—

**अस विचारिपंडित मोहि भजहीं। पायउ ज्ञान भगति नहिं तजहीं**

क्योंकि भेद भक्ति बीज है तथा निरगुण का ज्ञान वृक्ष है और अभेद भक्ति फल है जिसके सेवन करने से जीव कृतार्थ हो जाता है। हे गरुड़! जीव माया के वश होकर ८४ लक्ष योनियों में भ्रमण करता है यद्यपि इसका वास्तविक स्वरूप महाकाशवत सच्चिदानन्द ब्रह्मराम से घटाकाशवत अन्श होने के कारण अभिन्न है। जैसे घटाकाश घट से असंग होता है और महाकाश से अभिन्न होता है उसी प्रकार जीवात्मा देहों से असग है और भगवान राम के निर्गुण निराकार आकाशवत व्यापक स्वरूप से अभिन्न है परन्तु यह महान आश्चर्य की बात है कि अज्ञानवश जीव अपने अन्शी को भूला हुआ है और अपने को उससे प्रथक जान रहा है तथा अनात्मा देहोंसे अपने को अभिन्न मान रहा है जिसके कारण संसृत चक्र में अनादि काल से फंसा हुआ है और जबतक अनात्मा में आत्मबुद्धि रूपी ग्रन्थी नहीं छूटेगी और अन्शी भगवान राम के निर्गुण निराकार व्यापक स्वरूप में आत्म बुद्धि नहीं होगी तब तक बरावर जन्ममरण रूप संसार को प्राप्त होता रहेगा।

**सुनहु तात यह अकथ कहानी। समुझत बनहिं न जाइ बखानी**
**ईश्वर अंस जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी।**

सो माया वस भयउ गोसाईं । वंध्यो कीर मरकट की नाईं ।
जड़ चेतनहिं ग्रंथि परिगई । जदपि मृषा छूटत कठिनाई ।
तब ते जीव भयउ संसारी . छूट न ग्रंथि न होइ सुखारी ।
श्रुति पुरान वहु कहेउ पाई । छूट न अधिक अधिक अरुझाई
जीव हृदय तम मोह विसेषी । ग्रंथि छूट किमि परइ न देखी ।
अस संजोग ईस जव करई । तबहुं कदाचित सोनिरुअरई ।
सात्विक श्रद्धा धेनु सुहाई । जो हरि कृपा हृदय वस जाई ।
जप तप व्रत जम नियम अपारा । जे श्रुति कह सुभ धर्म अचारा
तेइ तृन हरित चरै जब गाई । भाव वच्छ सिसुपाइ पेन्हाई ।
नोइ निवृति पात्र विस्वासा । निर्मल मन अहीर निजदासा
परमधर्म मय पय दुहि भाई । अवटै अनल अकाम बनाई ।
तोष मरुत तव छमा जुड़ावै । घृत सम जावन देइ जमावै ।
मुदिता मथै विचार मथानी । दम अधार रजु सत्य सुबानी ।
तव मथि काढ़ि लेइ नवनीता । विमल विराग सुभग सुपुनीता ।

दो० जोग अगिनि करि प्रगट तव, कर्म सुभासुभ लाइ ।
बुद्धि सिरावै ग्यान घृत, ममता मल जरिजाइ ॥
तव विज्ञान निरूपिणी, बुद्धि विसद घृत पाइ ।
चित्त दिआ भरि धरै दृढ़, समता दिअटि बनाइ ॥
तीन अवस्था तीन गुन ते कपास ते काढ़ि ।
तूल तुरीय सँवारि पुनि, बाती करै सुगाढ़ि ॥

सो० एहि विधि लेसै दीप, तेजरासि विग्यान मय।
जातहिं जासु समीप, जरहिं मदादिक सलभ सब ॥

सोहमस्मि इति बृत्ति अखंडा । दीप शिखा सोइ परग प्रचंडा
आतम अनुभव सुख सुप्रकासा।तब भवमूल भेदभ्रम नासा

भाव यह है कि जीव के ८४ लक्ष योनियों में भ्रमण करने का मूल कारण अज्ञान जनित भेद भ्रम है जिसकी अत्यन्त निवृत्ति आत्मज्ञान के विना उसी प्रकार असम्भव है जैसे जाग्रत के ज्ञान के विना स्वप्न भ्रम की निवृत्ति असम्भव है। जैसे अन्धकार में पड़ी हुई रस्सी को ज्ञान करने के लिए प्रकाश आवश्यक है उसी प्रकार आत्मज्ञान के लिए विचार आवश्यक है। स्वप्नावस्था का जाग्रत अवस्था से मिलान करने पर समस्त भेद भ्रमनष्ट हो सकते हैं। जैसे स्वप्न के जीवों का स्वप्न साक्षी से भेद तथा परस्पर भेद, स्वप्न साक्षी का स्वप्न के जड़ पदार्थों से भेद और स्वप्न के जड़ पदार्थों का परस्पर भेद कल्पित निद्रा जनित है उसी प्रकार यहाँ जाग्रत अवस्था में भी उपरोक्त पांचों भेद अविधा जनित कल्पित हैं। अथवा जैसे विम्ब प्रतिविम्ब का तथा मठाकाश घटाकाश का भेद उपाधि कृत मिथ्या है उसी प्रकार ईश्वर जीव का मिथ्या भेद माया अविद्याकृत है और वास्तव में अभेद है। जैसे सूर्य के प्रतिविम्बों का अथवा घटाकाशों का परस्पर भेद कल्पित है उसी प्रकार जीवों का भी परस्पर भेद कल्पित है।

जीव में कर्ता भोक्ता पन की भ्रान्ति उसी प्रकार आरोपित है जैसे स्फटिक मणि में लाल पुष्प की लालिमा आरोपित है। जैसे घठ में घटा काश असंग है उसी प्रकार स्थूल-सूक्ष्म कारण तीनों शरीरों में जीव असंग हैं परन्तु अज्ञान पर्यन्त देहों में संग भ्रांति रहती है।

जैसे स्वर्ण से भूषण को भिन्न मानना भ्रान्ति है उसी प्रकार सच्चिदानन्द रामसे जगत को भिन्न सत्य मानना भ्रान्ति है। जैसे रज्जु में सर्प रज्जु का विवर्त है परिणाम नहीं उसी प्रकार सर्वाधिष्ठान राम में अखिल जगत सच्चिदानन्द राम का विवर्त है परिणाम नहीं। अतः जगतको परमात्मा रामका विकार मानना भ्रान्ति है। अतः उपरोक्त दृष्टान्तो को मनन करके भेद भ्रम तथा भ्रान्तियों को नष्ट कर देना चाहिए। जैसे जलपूर्ण नारियल उपहित आकाश तथा जल प्रतिबिम्बित आकाश नारिल से, उसकी जटाओं से, खोपड़ा से, गरीसे, तेल से एवं जल से प्रथक असंग है उसी प्रकार अन्तःकरण उपहित आत्मा अन्नमय कोशसे, प्राणमय कोश से मनोमय कोश से, विज्ञानमय कोश से तथा आनन्दमय कोश से प्रथक असंग सत चेतन आनन्द रूप है और, सच्चिदानन्द ब्रह्म का महाकाश घटाकाश वत अन्श है तथा अन्तःकरण प्रतिबिम्बित चेतनजीवका सामन्य रूप भो परमात्मा का उसी प्रकार अन्श है जैसे जलमें प्रतिबिम्बित आकाश महाकाश का अन्श होता है। अतः जीवात्मा को परब्रह्म परमात्मा का चेतन अविनाशी सुख राशी अन्श जानना तथा तीनों शरीरों को असत जड़ दुख रूप जानना विवेक है जो शम दमादि षट सम्पति, वैराग्य तथा मुमुक्षुता का मूल है। परन्तु ऐसा विवेक श्रद्धा भक्तिपूर्वक शिष्य भाव से दीर्घकाल तक सत्संग करने से होता है।

अतः गरुड़जी ने नम्रता पूर्वक शिष्य भाव से कागभुसुंडि जी से निवेदन किया:—

नाथ मोहि निज सेवक जानी। सप्त प्रस्न मम कहहु बखानी।
प्रथमहिं कहहु नाथ मतिधीरा। सब ते दुर्लभ कवन सरीरा।
बड़ दुख कवन कवन सुख भारी। सोउ संछेपहिं कहहु विचारी

संत असंत मरम तुम्ह जानहु। तिन्ह कर सहजसुभाव वखानहु
कवन पुन्यश्रुति विदित विसाला। कहहु कवनअघपरम कराला
मानस रोग कहहु समुझाई। तुम्ह सर्वज्ञ कृपा अधिकाई।

हे उमा! कागभुसुंडिजी ने इन प्रश्नोंके जो उत्तर दिये उनको सुनो

तात सुनहु सादर अति प्रीती। मैं संछेप कहउँ यह नीती।
नर तन सम नहिं कवनिउ देही। जीवचराचर जाचत तेही।
नरक स्वर्ग अपवर्ग निसेनी। ग्यान विराग भगति सुख देनी
सो तनु धरि हरिभजहिं न जेनर। होहिं विषयरत मंद-मंद तर।
काँच किरिच बदले ते ले हीं। करते डारि परस मनि देहीं।
नहिं दरिद्र सम दुख जगमाहीं। संत मिलन सम सुख जगनाहीं
परउपकार वचन मन काया। संत सहज सुभाउ खगराया।
संत सहहिं दुख परहित लागी। पर दुख हेतु असंत अभागी।
भूर्ज तरू सम संत कृपाला। परहित नितिसह विपति विशाला।
सन इव खल पर बंधन करई। खाल कढ़ाइ विपति सहिमरई।
खल विनु स्वारथ पर अपकारी। अहि मूषक इव सुनु उरगारी
पर सम्पदा विनासि नसाहीं। जिमि ससि हतिहिगउपलविलाहीं
दुष्ट उदय जग आरति हेतू। जथा प्रसिद्ध अधम ग्रह केतू।
संत उदय संतत सुख कारी। विश्व सुखद जिमि इंदु तमारी
परमधर्म श्रुति विदित अहिंसा। परनिंदा सम अघ न गरीसा।

हर गुर निंदक दादुर होई। जन्म सहस्र पाव तनु सोई।
द्विज निंदकबहु नरक भोग करि। जग जनमइवायस सरीरधरि
सुर श्रुति निंदक जे अभिमानी। रौरव नरक परहिं ते प्रानी।
होहिं उलूक संत निंदा रत। मोहनिसा प्रिय ग्यान भानुगत।
सब कै निंदा जे जड़ करहीं। ते चमगादुर होइ अवतरहीं।
सुनहु तात अवमानस रोगा। जिन्हते दुख पावहिं सब लोगा।
मोह सकल व्याधिन्ह कर मूला। तिन्हते पुनि उपजहिंबहुसूला।
काम वात कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा।
प्रीति करहिं जौं तीनिउ भाई। उपजइ सन्यपात दुखदाई।

तात्पर्य यह है कि जैसे स्थूल शरीर में समस्त रोगों का मूल मल है उसी प्रकार सूक्ष्म शरीर में रोगों का मूल मोह है। जैसे मल के विकृत होने पर वात पित्त कफ में विकार उत्पन्न हो जाता है और तीनों विकृत होने हर सन्यपात हो जाता है उसी प्रकार मोह होने पर काम, क्रोध लोभ विकार उत्पन्न होते हैं और तीनों से युक्त होने पर सन्यपाती की भाँति जीव नरक और नीच योनियों का स्वप्न देखने लगता है तथा महान कष्ट को प्राप्त होता है। जैसे वात पित्त कफ जनित अनेक रोग स्थूल शरीर में उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार काम क्रोध लोभ के कारण मन में अनेक विकार उत्पन्न होते हैं यथा:—

विषय मनोरथ दुर्गम नाना। ते सब सूल नाम को जाना।

ममता दादु कंडु इरषाई। हरष विषाद गरह बहुताई।
पर सुख देखि जरनि सोइ छई। कुष्ट दुष्टता मन कुटिलई।
अहंकार अति दुखद डमरुआ। दंभ कपट मद मान नेहरुआ।
तृस्ना उदर बृद्धि अति भारी। त्रिविधि ईषना तरुन तिजारी।
जुग विधि ज्वर मत्सर अविवेका। कहँ लगि कहौं कुरोगअनेका

दो० एक व्याधि वस नर मरहिं, ए असाधि बहु व्याधि।
पीड़हि संतत जीव कहुँ, सो किमि लहै समाधि॥

यहि विधिसकल जीव जगरोगी। सोक हर्ष भय प्रीति वियोगी
मानस रोग कछुक मैं गाए। हहिं सबके लखि विरलेन्ह पाए।
जाने ते छीजहिं कछु पापी। नाशन पावहिं जन परितापी॥
विषय कुपथ्य पाइ अंकुरे। मनिहु हृदय का नर बापुरे।
राम कृपा नासहिं सब रोगा। जौं एहि भाँति बनै संयोगा
सद्गुरु वैद वचन विश्वासा। संजम यह न विषय कै आसा।
रघुपति भगति सजीवन मूरी। अनूपान श्रद्धा मति पूरी।
एहि विधिभलेहिसोरोगनसाहीं। नाहिंत जतन कोटि नहिंजाहीं
जानिअ तब मनविरुज गोसाईं। जब उरबलबिराग अधिकाई
सुमति छुधा बाढ़इ नित नई। विषय आस दुर्वलता गई।
विमल ज्ञान जल जब सो नहाई। तब रह राम भगतिउर छाई

सिव अजसुकसनकादिक नारद । जे मुनि ब्रह्मविचारविसारद
सब कर मत खगनायक एहा । करिअ राम पदपंकज नेहा ।
श्रुति पुरान सब ग्रन्थ कहाहीं । रघुपति भगति विना सुख नाहीं
कमठ पीठ जामहिं बरु बारा । बन्ध्या सुत बरु काहुहि मारा ।
फूलहिं नभ बरु बहु विधि फूला । जीवन लह सुखहरिप्रतिकूला
तृषा जाइ बरु मृग जलपाना । बरु जामहिं सस सीस विषाना ।
अन्धकार बरु रबिहिनसावै । राम विमुख न जीव सुख पावै ।
हिमते अनल प्रगट बरु होई । विमुख राम सुख पावन कोई ।

दो० वारि मथे घृत होइ बरु, सिकता ते बरु तेल ।
बिनु हरि भजन न भव तरिअ, यह सिद्धान्त अपेल ॥
मसकहिं करइ विरंचि प्रभु, अजहि मसकते हीन ।
अस विचारि तजि संसय, रामहिं भजहिं प्रवीन ॥

श्रुति सिद्धांत इहइ उरगारी । राम भजिअ सब काज विसारी ।
सत संगति दुर्लभ संसारा । निमिष दंड भरि एकउ बारा ।

जैसे शब्दों द्वारा वकील अपराधी को फाँसी से छुड़ा देता है उसी प्रकार सतसंग सर्वात्मा सर्वाधिष्ठान सच्चिदानन्द राम की कथा द्वारा बद्ध जीव को ८४ लक्ष फाँसियों से सदा के लिए मुक्त कर देता है और परमानन्द की प्राप्ति करा देता है तथा संशय मोह भ्रम का अत्यन्ताभाव कर देता है । अतः संशय मोह भ्रम का कागभुसुंडि के सत्संग द्वारा अत्यन्ताभाव होने पर गरुड़ जी बोले—

मैं कृतकृत्य भयऊँ तव बानी। सुनि रघुवीर भगति रस सानी।
रामचरन नूतन रति भई। माया जनित विपति सब गई।
मोह जलधि बोहित तुम्ह भए। मोकहँ नाथ विविधि सुख दए।
मो पहिं होइ न प्रति उपकारा। वंदउँ तव पद बारहि बारा॥
जीवन जन्म सुफल मम भयऊ। तव प्रसाद संसय सब गयऊ।

गरुड़ के कृतकृत्य होने पर भगवान शंकर बोले—

दो० गिरजा संत समागम, सम न लाभ कछु आन।
बिनु हरि कृपा न होइ सो, गावहिं बेद पुरान॥
मुनि दुर्लभ हरि भगति नर, पावहिं बिनहिं प्रयास।
जो यह कथा निरन्तर, सुनहिं मानि विश्वास।

दो० राम चरन रति जो चह, अथवा पद निर्वान।
भाव सहित ता यह कथा, करउ श्रवन पुट पान॥

मन कामना सिद्ध नर पावा। जो यह कथा कपट तजि गावा।
कहहिं सुनहिं अनुमोदन करहीं। तेगो पद इव भवनिधि तरहीं

जैसे ओझा के मन्त्रों द्वारा भूत उतर जाता है उसी प्रकार भगवान शंकर के उपदेश से पारवतीजी का मोह निवृत्त हो गया। संशय मोह भ्रम निवृत्त होने पर पारवतीजी बोलीं—

नाथ कृपा मम गत संदेहा। रामचरन उपजेउ नव नेहा।

दो० मैं कृतकृत्य भयऊँ अब, तव प्रसाद विश्वेस।
उपजी रामभगति दृढ़, बीते सकल कलेस॥

इस प्रकार यज्ञवल्क्यजी ने उमाशम्भु सम्वाद पूर्ण रूप से भरद्वाज जी को सुनाया। तत्पश्चात यज्ञवल्क्यजी भरद्वाजजी से बोले:—

यह शुभ संभु उमा संबादा। सुख संपादन समन बिषादा।
भव भंजन गंजन संदेहा। जन रंजन सज्जन प्रिय एहा।
रघुपति कृपा जथा मति गावा। मैं यह पावन चरित सुहावा।
रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहिं। संतत सुनिअ रामगुन ग्रामहिं।

महात्मा तुलसीदासजी अपने मनको निमित्त बनाकर कलिकाल ग्रसित मनुष्यों को उपदेश दे रहे हैं कि ऐ मन! यदि तू यह सन्देह करे कि मैं तो महान पापी हूँ अतः मेरा किसी उपाय से उद्धार नहीं हो सकता क्योंकि शुद्ध मनों की ही गति होती है तो मैं तेरे समाधान के लिए कुछ महान पापियों के उदाहरण देता हूँ जो पतित पावन सच्चिदानन्द राम के भजन से सद्गति को उसी प्रकार प्राप्त हुए जैसे जाग्रत के स्मरण मात्र से स्वप्न के समस्त पापों से मुक्ति हो जाती है।

पाईन केहि गतिं पतित पावन रामभजि सुन सठ मना।
गनिका अजामिल ब्याधगीध गजादि खल तारे घना॥
आभीर जमन किरात खस स्वपचादि अति अघ रूप जे।
कहि नाम बारेक तेपि पावन होहिं राम नमामि ते॥
रघुवंस भूषन चरित यह नर कहहिं सुनहिं जे गावहीं।
कलिमल मनोमल धोइ बिनु श्रम रामधाम सिधावहीं॥
जाकी कृपा लवलेस ते मतिमद तुलसीदास हूँ।
पायो परम विश्राम राम समान प्रभु नाहीं कहूँ॥

दो० मो समदीन न दीन हित, तुम्ह समान रघुवीर।
अस विचारि रघुवंस मनि, हरहु विषम भव भीर॥
कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर, प्रिय लागहु मोहि राम॥

श्लोकः—यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्री शम्भुनादुर्गमं।
श्रीमद्रामपदाब्ज भक्तिमनिशं प्राप्त्यै तु रामायणम्॥
मत्वा तद्रघुनाथ नामनिरतं स्वान्तस्तमः शान्तये।
भाषा बद्ध मिदं चकार तुलसीदासस्तथा मानसम्॥
पुण्यं पाप हरं सदाशिवकरं विज्ञान भक्ति प्रदं।
माया मोहमलापहं सुविमलं प्रेमाम्बुपूरं शुभम्॥
श्री मद्रामचरित्रमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये।
ते संसार पतङ्ग घोर किरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः॥

तात्पर्य यह है कि श्रीं रामचरित मानस का मुख्य प्रयोजन अनन्य भक्ति द्वारा शोकसागर संसार की अत्यन्त निवृत्ति तथा सर्वात्मा परमानन्द ब्रह्मराम की नदी समुद्रवत प्राप्ति है जो ग्रन्थ के तात्पर्य के निर्णायक षटलिङ्गों द्वारा सिद्ध हो सकता है यथाः—

उपक्रम—'यत्पादप्लवमेकमेवहि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां।
वन्देऽहं तमशेष कारणपर रामाख्यमीशं हरिम्॥

(बालकाण्ड वन्दना श्लोक ६)

उपसंहार—'ते संसार पतङ्ग घोर किरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः।'

(उत्तर काण्डका अन्तिम श्लोक)

अभ्यासः–'नाम लेत भवसिन्धु सुखाहीं ।'

'सादर सुनहिं तेतरहिभव सिन्धु बिना जलयान ।'

'भवसागर चह पार जो पावा'।'ते गोपद इव भवनिधि तरहीं ।

'संसृत रोग सजीवन मूरी'। करौं कथा भवसरिता तरनी ।

'संसारमय भेषजं सुखकरं श्रीजानकी जीवनं' ।

'महाअजय संसार रिपु, जीत सकइ सो वीर' ॥

'तव भव मूल भेद भ्रम नाशा'।'भव सिन्धु अगाध परे नरतं' ।

'विनु हरि भजन नभव तरिअ, यह सिद्धात अपेलुं ।'

३ अपूर्वता–

गुरु विनु भवनिधि तरइ न कोई । जो विरंचि शंकर सम होई ।

दो० सकल सुमंगल दायक रघुनायक गुनगान ।

सादर सुनहिं ते तरहिं भव, सिन्धु विना जलयान ॥

राम अतर्क्य बुद्धि मनवानी । मत हमार अस सुनहु सयानी ।

दो०गुरु विनु होइ कि ज्ञान, ज्ञान कि होइ विराग विनु ।

गावहिं वेद पुरान, सुख कि लहइ हरि भगति विनु ॥

४ फल–जेहि जाने जग जाइ हिराई ।

जागे यथा स्वप्न भ्रम जाई ॥

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई । जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई ।

सरिता जल-जलनिधिमहँ जाई । होइ अचलजिवजिमिहरिपाई ।

५ अर्थवाद—

अति दुर्लभ कैवल्य परम पद। संत पुरान निगम आगम वद।
सोइ कविकोविदसोइरन धीरा। जो छल छाँड़ि भजहिरघुवीरा।
दो॰असप्रभुछाँड़िभजहिंजआना। ते नर पशु विनु पूँछ विषाना
दो॰ जो न तरै भव सागर, नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मंदमति, आत्माहन गति जाइ॥

६ उपपत्ति—

झूठेउ सत्य जाय विनुजानें। जिमि भुजंग विनु रजु पहिचाने
राम सच्चिदानन्द दिनेशा। नहिं तहँ मोह निशा लव लेशा।
दो॰ रजतसीप महुँ भास जिमि, जथा भानु करि वारि।
जदपि मृषातिहुं काल सोइ, भ्रम न सकइ कोउटारि॥
यहिंविधिजगहरि आश्रित रहई। जदपि असत्य देत दुख अहई
दो॰ सपनें होइ भिखारि नृप, रंक नाकपति होइ।
जागे लाभु न हानि कछु, तिमि प्रपंच जिय जोइ॥

अतः षटलिङ्गों द्वारा सिद्ध हो गया कि रामचरित मानस का प्रयोजन अज्ञान सहित जगत की निवृत्ति तथा परमानन्द ब्रह्म राम की प्राप्ति रूप मोक्ष है जिसको भगवान रामने भी मनुष्य देह पानेका उद्देश्य बतलाया यथा—

बड़े भाग्य मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सद ग्रन्थन गावा।
साधन धाम मोक्ष कर द्वारा। पाइ न जेहि परलोक सुधारा

इस ग्रन्थ का विषय सच्चिदानन्द सर्वात्मा सर्वाधिष्ठान ब्रह्म राम का निरूपण है जिसका भोक्ता जीव और भोग्य जगत से अभेद है। यथा—

एहि मह आदि मध्य अवसाना। प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना।
राम ब्रह्म व्यापक जग जाना। परमानंद परेश पुराना।
व्यापक व्याप्य अखंड अनन्ता। अखिल अमोघ शक्ति भगवंता।
व्यापक विश्वरूप भगवाना। तेहि धरि देह चरित कृत नाना।
सो तैं ताहि तोहि नहिं भेदा। वारि बीचि इव गावहि वेदा।

सच्चिदानन्द राम का इस ग्रन्थ के साथ प्रतिपाद्य प्रतिपादक रूप सम्बन्ध है। इस ग्रन्थ का अधिकारी भवसागर से पार होने का इच्छुक श्रद्धालु सत्संगी है। यथा:—

भवसागर चह पार जो पावा। राम कथा ता कहँ दृढ़ नावा।
राम कथा के तेइ अधिकारी। जिन्हके सत संगति अति प्यारी।
सदा सुनहिं सादर नर नारी। तेइ सुरवर मानस अधिकारी।
दो० जे श्रद्धा संवल रहित, नहिं संतन्ह कर साथ।
तिन्ह कहुं मानस अगम अति, जिन्हहिं न प्रिय रघुनाथ।

जैसे सरोवरों में घाट, सीढ़ियाँ, गहराई, जल, तथा उसके चारो ओर बगीचे होते हैं उसी प्रकार रामचरित मानस में भी हैं यथा—

सप्त प्रबन्ध सुभग सोपाना। ग्यान नैन निरखत मन माना
बरषहिं राम सुजस वर बारी। मधुर मनोहर मंगल कारी।

अर्थात् राम सुयस रूपी जल मल विक्षेप आवरण तीनों का नाशक है।

अद्भुत सलिल सुनत गुनकारी। आस पियास मनोमल हारी।
भव श्रम सोषक तोषक तोषा। समन दुरित दुख दारिद दोषा।
संत सभा चहुँ दिसि अँवराई। श्रद्धारितु वसंत सम गाई।
सम जम नियम फूलफल ज्ञाना। हरिपद रतिरस वेद वखाना।

दो० सुठि सुन्दर संवाद वर, विरचेबुद्धि विचारि।
तेइ एहि पावन सुभग सर, घाट मनोहर चारि॥

रघुपति महिमा अगुन अवाधा। बरनव सोइ वर वारि अगाधा।

अर्थात् अनादि अनन्त त्रिकालावाध्य परमार्थ सत्ता ही इस मानस की गहराई है। व्यावहारिक सत्तावाला जाग्रत पारमार्थिक सत्ता में उसी प्रकार वाधित हो जाता है जैसे प्रातिभासिक सत्ता वाले स्वप्न का जाग्रत में बाध हो जाता है। अतः 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' जो वेदों का सिद्धान्त है वही रामचरित मानस का है। यथा—

उमा कहौं मैं अनुभव अपना। सतहरि भजन जगत सब सपना।

ॐ शान्ति; शान्ति, शान्ति।

# बालबोध प्रश्नोत्तरी

प्रश्न—ईश्वर किसे कहते हैं।

उत्तर—जो संसार को पैदा करता है पालन करता है और नाश करता है और बाद में अकेला शेष रह जाता है और संसार पैदा करने के पहले भी केवल एक ही था वही ईश्वर है।

प्रश्न—ईश्वर कहाँ रहता है।

उत्तर—बरफ में जल की भांति ईश्वर सब जगह व्यापक है।

प्रश्न—ईश्वर आँखों से दिखाई क्यों नहीं पड़ता।

उत्तर—ईश्वर हवा की तरह निराकार है इस कारण आखों से दिखाई नहीं पड़ता।

प्रश्न—यदि ईश्वर निराकार है तो ध्रुव प्रह्लाद ने आखों से ईश्वर का दर्शन कैसे किया।

उत्तर—ध्रुव प्रह्लाद ने ईश्वर के शरीर का आखों से दर्शन किया था। ईश्वर की आत्मा का ज्ञान होता है आखों से दर्शन नहीं होता क्योंकि आत्मा निराकार है।

प्रश्न—ईश्वर क्यों शरीर धारण करता है।

उत्तर—भक्तों के प्रेम के वश में होकर भक्तों को दर्शन देने के लिए और उनकी रक्षा करने के लिए तथा दुष्टों का नाश करने के लिए ईश्वर शरीर धारण करता है।

प्रश्न—तुम कौन हो।

उत्तर—सूर्य के प्रकाश की भाँति हम ईश्वर के अन्श जीवात्मा हैं।

प्रश्न—शरीर क्या है।

उत्तर—शरीर हमारा कपड़ा है।

प्रश्न—शरीर की रक्षा किस लिए करना चाहिए।

उत्तर—बड़ों की सेवा तथा परोपकार करने के लिए और ईश्वर की भक्ति करने के लिए शरीर की रक्षा करना चाहिए।

प्रश्न—क्या मरने से डरना चाहिए।

उत्तर—मरने से नहीं डरना चाहिए क्योंकि शरीर के मरने से जीवात्मा नहीं मरता है। कपड़े के नाश होने पर आत्मा का नाश मानकर भय करना और रोना मूर्खों का काम है।

प्रश्न—मनुष्य का मुख्य कर्तव्य क्या है।

उत्तर—मनुष्य का मुख्य कर्तव्य है ईश्वर प्राप्ति।

प्रश्न—ईश्वर प्राप्ति क्यों करना चाहिए।

उत्तर—ईश्वर प्राप्त होने पर कोई दुख कभी नहीं होता और सदा आनन्द रहता है इसलिए ईश्वर प्राप्त करना चाहिए।

प्रश्न—ईश्वर प्राप्ति कैसे हो सकती है।

उत्तर—पापों को छोड़ देने से और सबको सुख पहुँचाने से तथा प्रेम से सत्संग भजन करने से ईश्वर प्राप्ति होती है।

प्रश्न—सब से बड़ा पाप क्या है।

उत्तर—सब से बड़ा पाप क्रोध है।

प्रश्न—क्रोध से क्या हानि है।

उत्तर—क्रोध करने से शरीर का खून सूख जाता है और शरीर रोगी हो जाता है। क्रोध से बुद्धि का नाश हो जाता है और हृदय मलिन हो जाता है। क्रोधी से कोई प्रसन्न नहीं रहता।

प्रश्न—क्रोध छोड़ने के क्या उपाय हैं।

उत्तर—क्रोध छोड़ने के उपाय—सत्संग भजन करना। मांस मछली अंडा मदिरा तम्बाकू बीड़ी सिगरेट तथा नशीली चीजों का कदापि सेवन न करना क्योंकि जैसा खाये अन्न वैसा बने मन और जैसा करे संग वैसा चढ़े रंग। अतः बुरे लोगों से दूर रहना, अपराध होने पर बड़ों से क्षमा माग लेना, और चुप रहना। बड़ों के दण्ड को सहन करने से धन विद्या और आयु बढ़ती है ऐसा विश्वास करना। क्रोध आने पर क्रोध के स्थान से हट जाना और एकान्त में ईश्वर का नाम लेना और क्रोध हटाने के लिए ईश्वर से प्रार्थना करना। क्रोध के समय ठंडा पानी पीना और शीशा देखना। गीता या रामायण पढ़ने लगना। क्रोध को शत्रु और काला सर्प समझ कर क्रोध से वैर करना। इन उपायों से क्रोध छोड़ा जा सकता है।

प्रश्न—सबसे बड़ा पुण्य क्या है ?

उत्तर—सबसे बड़ा पुण्य सबकी सेवा करना है।

प्रश्न—सबकी सेवा कैसे करना चाहिए ?

उत्तर—जैसे माली बाग की सेवा मालिक की सेवा समझ कर करता है उसी प्रकार सबकी सेवा भगवान की सेवा समझ कर करना चाहिये।

प्रश्न—सुखी कौन है और दुखी कौन है ?

उत्तर—सद्गुणी सुखी रहता है और दुर्गुणी सदा दुखी रहता है।

प्रश्न—सद्गुण कौन कौन हैं और सद्गुणों का मूल कौन है ?

उत्तर—बड़ों की सेवा, क्षमा, दया, सन्तोष, धीरज, नम्रता, ब्रह्मचर्य, ईश्वर-भक्ति, अहिंसा, सत्य, प्रसन्नता स्नान, सन्ध्या नित्य करना आदि सद्गुण हैं और ब्रह्मचर्य सद्गुणों का मूल है।

प्रश्न—ब्रह्मचर्य किसे कहते हैं।

उत्तर—आठ मैथुनों का त्याग ब्रह्मचर्य कहलाता है।

प्रश्न—त्यागने योग्य आठ मैथुन कौन कौन है ?

उत्तर—१. स्त्रियों का ध्यान करना। २. उनके रूप की प्रशंसा करना। ३. उनके साथ खेल खेलना। ४. उनको बार बार टकटकी बाँध कर देखना। ५. उनसे एकान्त में बात करना। ६. उनकी प्राप्ति के उपाय का चिन्तन करना। ७. उनको प्राप्ति के लिए पक्का निश्चय कर लेना। ८. उनके साथ भोग करना। ये आठ मैथुन ब्रह्मचारी को अवश्य विषवत त्याग देना चाहिए।

प्रश्न—दुर्गुण कौन कौन हैं और दुर्गुणों का मूल कौन है।

उत्तर—कुसंग, क्रोध, चोरी, हिंसा, झूठ, निन्दा, कठोरता, कुदृष्टि, घमंड, जुआ खेलना, सिनेमा देखना, मांस मदिरा सेवन करना, कड़ुए शब्द बोलना आदि दुर्गुण हैं और दुर्गुणों का मूल कुसंग है।

प्रश्न—वेद कौन-कौन हैं और किसने बनाये हैं ?

उत्तर—ऋगवेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्व वेद कुल चार वेद हैं जिनको ईश्वर ने रचा है।

प्रश्न—धर्मग्रन्थ कौन-कौन हैं ?

उत्तर—चार वेद, छः शास्त्र, अठारह पुराण, महाभारत, गीता, रामायण आदि धर्म ग्रन्थ हैं।

प्रश्न—जन्म और मृत्यु किसे कहते हैं ?

उत्तर—शरीर रूपी कपड़े को पहन लेना जन्म और उतार देना मृत्यु है।

प्रश्न—शरीर को छोड़ने पर जीव अपने साथ क्या क्या ले जाता है और कहाँ जाता है।

उत्तर—जैसे यात्री रेल से उतरते समय अपना सामान अपने साथ ले जाता है उसी प्रकार जीव शरीर छोड़ते समय अपन साथ पाँच कर्म इन्द्रियाँ, पाँच ज्ञान इन्द्रियाँ, पाँच प्राण, अन्तःकरण तथा पाप पुण्य साथ ले जाता है और पाप पुण्य के अनुसार स्वर्ग नरक तथा उत्तम, मध्यम अधम शरीरों को प्राप्त करता है।

प्रश्न—पाँच कर्म इन्द्रियाँ और पाँच ज्ञान इन्द्रियाँ कौन कौन हैं।

उत्तर—५ कर्मेन्द्रियाँः—वाणी, हाथ, पैर, मूत्र त्याग इन्द्रिय और मल त्याग इन्द्रिय। ५ ज्ञानेन्द्रियाँः—कान, त्वचा, नेत्र, रसना और नाक। प्रश्न-पाँचप्राण कौन हैं।

उत्तर—१-हृदय में रहने वाला प्राण। २-गुदा में रहने वाला अपान। ३-नाभि में रहने वाला समान। ४-कंठ में रहमें वाला उदान ५-पूरे शरीर में रहने वाला व्यान। प्रश्न—अन्तःकरण किसे कहते हैं।

उत्तर—मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार चारा को मिलाकर अन्तः करण कहते हैं।

प्रश्न—मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार किसे कहते हैं।

उत्तर—संकल्प विकल्प वृत्ति को मन, निश्चय वृत्ति को बुद्धि, चिन्तन वृत्ति को चित्त और अभिमान वृत्ति को अहंकार कहते हैं।

प्रश्न—जीवात्मा किसे कहते हैं।

उत्तर—अन्तःकरण को ज्ञान शक्ति देने वाले ईश्वर अन्श को जीवात्मा कहते हैं जो मन वुद्धि आदि सब को जानता है और जिसको कोई नहीं जानता है।

प्रश्न—वन्ध और मोक्ष किसे कहते हैं।

उत्तर—परम पिता परमेश्वर को भूलकर शुभाशुभ कर्मों को भोगने के लिए ८४ लक्ष योनियों में भटकने को वन्ध कहते हैं और नदी समुद्र वत सच्चिदानन्द परमात्मा की प्राप्ति और दुःखों की सदा के लिए निवृत्ति हो जाना ही मोक्ष है।

प्रश्न—मोक्ष प्राप्ति के साधन क्या हैं।

उत्तर—मोक्ष प्राप्ति के साधन ज्ञान भक्ति वैराग्य और सत्संग हैं।

प्रश्न—बड़ों को प्रणाम करने से क्या लाभ है।

उत्तर—अभिवादन शीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्या, यशोवलम्॥

अर्थात्–प्रणाम करने से आयुविद्या, यश और बल बढ़ता है।

इसीलिए—

प्रातकाल उठि कै रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहिं माथा।
आयसु मांगि करहिं पुरकाजा। देखि चरित हरषइ मन राजा।

वालकों को माता-पिता गुरु एवं बड़ों से इस प्रकार अपनी भावना प्रगट करना चाहिये कि—

सुन जननी सोइ सुत बड़भागी। जो पितु मातु बचन अनुरागी।
जे गुरु पद अम्बुज अनुरागी। ते लोकहु वेदहु बड़ भागी।
तनय मातु पितु तोषनि हारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा।
गुरु पितुमातुस्वामि हितबानी। सुनिमनमुदितकरिअ भलिजानी।
उचित कि अनुचित किएविचारू। धर्म जाइ सिर पातक भारू।
उतरु देइ सुनि स्वामि रजाई। सो सेवक लखि लाज लजाई।
सहज सनेह स्वामि सेवकाई। स्वारथ छलफल चारि विहाई।

आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा। सो प्रसाद जन पावै देवा।
मातु पिता गुरु स्वामि निदेसू। सकल धरम धरनी धर सेसू।
सेवकहित. साहिब सेवकाई। करै सकल सुख लोभ बिहाई।

दो० मातुपिता गुरुस्वामि सिख, सिर धरि करहिं सुभाय।
लहेउ लाभ तिन्ह जनम कर, नतरु जनमु फल जाय॥

## ईश्वर प्रार्थना (१)

हे दयामय! आप ही संसार के आधार हो।
आप ही कर्तार हो हम सब के पालन हार हो॥१
जन्म दाता आप ही माता पिता भगवान हो।
सर्व सुखदाता सखा भ्राता हो तनधन प्राण हो॥२
आपके उपकार का हम ऋण चुका सकते नहीं।
बिन कृपाके शान्ति सुख का सार पा सकते नहीं॥३
दीजिये वह मति बने हम सद्‌गुणी संसार में।
मन हो मंजुल धर्ममय और तन लगे उपकार में॥४

## २

हे भगवान हे भगवान। हम सब बालक हैं अज्ञान।
तुम हो माता पिता हमारे। हर लो सबके पातक सारे।
करें सभी से सदा प्रेम हम। हरें सभी का दुःख दोष हम।
सबका भला सदा ही चाहें। दूर करें दुखियों की आहें।

मात पिता गुरु आज्ञा माने। उनको परमेश्वर सम जाने।
सेवा करें सदा तन मन से। धन से जीवन से यौवन से।
गुस्से को आते ही मारें! क्षमा नम्रता मन में धारें।
करें किसी से नहीं लड़ाई। करें किसी की नहीं बुराई।
नहीं किसी को गाली देवें। कोई दे तो हम सह लेवें।
मारें पीटें नहीं किसी को। कभी सतावें नहीं किसी को।
झूठ न बोलें चीज न लेवें। सदा सत्य को मन ये सेवें।
राम नाम का जाप करें नित। गुरुओंके हम चरण पड़ें नित।
पढ़ें पढ़ावें खेलें खावें। ईश कृपा से मौज उड़ावें।
दो प्रभु हमको यह वरदान। हे भगवान हे भगवान।
हे भगवान हे भगवान। हम सब बालक हैं अज्ञान॥

दो० वार वार वर मागहूँ, हर्षि देहु श्री रंग।
पद सरोज अनपायनी, भक्ति सदा सत्संग॥

कामिहिं नारि पियारि जिमि, लोभी प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरन्तर, प्रिय लागहु मोहिं राम॥

## ❀ भोजन के समय की प्रार्थना ❀

हे सर्वशक्ति सम्पन्न प्रभो! करबद्ध विनय हम करते हैं।
सेवा में वस्तु तुम्हारी ही अर्पण कर भोजन करते हैं।

इन्द्रियाँ चित्त इस सेवन कर, सब परहित ही में लग जावें।
सच्चिदानन्द दो शक्ति हमें, जिससे जीवन का फल पावें।

शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं।
विश्वाधारं गगग सदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम्।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यं।
वन्दे विष्णुं भव भयहरं सर्वलोकैकनाथकम्॥ १

नीलाम्बुज श्यामलकोमलाङ्गं सीता समारोपित वामभागम्।
पाणौ महासायक चारु चापं नमामि रामं रघुवंश नाथम्॥२
कर्पूरगौरं करुणावतारं संसार सारं भुजगेन्द्र हारम्।
सदावसंतं हृदयारविन्दे भवं भवानी सहितं नमामि॥३

वसुदेव सुतं देवं, कंस चाणूर मर्दनम्।
देवकी परमानंदं, कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्॥४
मूकं करोति वाचालं, पंगुलङ्घयते गिरिम्।
यत्कृपा तमहम् वन्दे, परमानंद माधवम्॥५

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बंधुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥६

सो० जो सुमिरत सिधि होइ, गणनायक करिवर बदन।
करउ अनुग्रह सोइ, बुद्धि राशि शुभ गुन सदन।
मूक होइ वाचाल, पंगु चढ़इ गिरिवर गहन।

जासु कृपा सो दयाल, द्रवउ सकल कलिमल दहन ।
नील सरोरुह श्याम, तरुन अरुन वारिज नयन ।
करउ सो मम उर धाम सदा छीर सागर सयन ॥
कुंद इंदु सम देह, उमा रमन करुना अयन ।
जाहि दीन पर नेह, करउ कृपा मर्दन मयन ॥
वन्दउँ गुरुपद कंज, कृपा सिंधु नर रूप हरि ।
महामोह तम पुन्ज, जासु वचन रविकर निकर ॥

# बालकों के हितकारी नियम

१—सूर्योदय से पहले उठकर भगवन्नाम लेना और प्रार्थना कहना तथा पृथ्वी को प्रणाम करना यह कहकर—'विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे।' फिर बड़ों को प्रणाम करना।

२—शौच स्नान के पश्चात् भगवन्नाम जप, हनूमान चालीसा, गीता, रामायण का पाठ व प्रार्थना करना तथा सूर्य को जल चढ़ाना।

३—कोई न कोई श्लोक, दोहा, चौपाई नित्य याद करना और सुनाना।

४—कड़वे व असत्य वचन को त्याग करना, सदा सत्य मीठे वचन बोलना, तथा बड़ों की आज्ञा पालन करना और अपने प्रत्येक कार्य को ठीक समय पर करना।

५—रात्रि में पैर धोकर और भगवन्नाम लेते हुए दक्षिण या पूर्व शिर करके सोना। प्रातः उठकर एक गिलास पानी शौच जाने के पहले पीना। आसन व्यायाम नित्य करना और खुली वायुमें टहलना। सादा भोजन और सादा रहन सहन रखना।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

गीताधर्म प्रेस, मिश्रपोखरा, वाराणसी।